Brahman Ki Beti (Bangla Novel in Hindi)

By Sarat Chandra Chattopadhyay

प्रकरण 1

मुहल्ले में घूमने-फिरने के बाद रासमणि अपनी नातिन के साथ घर लौट रही थी। गाँव की सड़क कम चौड़ी थी, उस सड़क के एक ओर बंधा पड़ा मेमना (बकरी का बच्चा) सो रहा था। उसे देखते ही बुढ़िया नातिन को चेतावनी देने के स्वर में सावधान करती हुई बोली 'ऐ लड़की, कहीं आँख मींचकर चलती हुई मेमने की रस्सी लांधने की मूर्खता न कर बैठना। अरी, यह क्या, लांध गयी. तू भी हरामजादी बिना ध्यान दिये चल देती है। क्या तुझे रास्ते में बंधी बकरी दिखाई नहीं देती?'

नातिन बोली, 'दादी, बकरी तो सो रही है।'

'तो क्या, सो रही बकरी की रस्सी टापने में दोष नहीं लगता? तुझे क्या इतना भी मालूम नहीं कि मंगल और शनि के दिन रस्सी लांधने का परिणाम अनर्थ होता है।'

'काहे का अनर्थ होता है? यह सब बेकार की बातें है।'

तिलमिला उठी दादी बोली. 'ब्राह्मण के घर में जन्मी नौ-दस साल की हृष्ट-पुष्ट लड़की के पास बुद्धि का अभाव लगता है, इसीलिए वह इतना भी नहीं जानती कि मंगल और शनि के दिन बकरी की रस्सी को नहीं लांधना चाहिए, उल्टे मुझे समझाती है कि यह बेकार का वहम है। इन मरों की बकरी पालने के शौक के मारे तो लोगों का राह चलना दूभर हो गया है। सड़क के बीच बकरी को बांधने वाले भी कितने मूर्ख है? वे यह नहीं सोचते कि बेचारे बच्चे अनजाने में रस्सी लांध जाते हैं। क्या उन्हें बच्चों के हित का भी ध्यान नहीं आता? लगता है, जैसे उनके बच्चे हैं ही नहीं, तभी तो वे सोच-विचार नहीं कर पाते।'

अचानक रासो की नजर बकरी को हटाने जा रही दूले जाति की एक बाहर वर्षीय लड़की पर पड़ गयी। उस पर बरसती हुई बुढ़िया बोली, 'अरी, तू कौन है? तू दूर हटकर क्यों नहीं चलती? कहीं मेरी नातिन से तेरा आँचल छू तो नहीं गया? लगता है कि तुझे ठीक से सुनाई-दिखाई नहीं देता।'

घबराई हुई दूले की लड़की धीमे स्वर में बोली, 'दादी जी, मैं तो स्वयं आप लोगों से बचकर चल रही हूँ।'

'तुझे इधर से गुजरने की अनुमति किसने दी है? यह बकरी भी शायद तेरी है। तुम कौन जात के हो और यहाँ किस प्रयोजन से आये हो?'

'दादी जी, हम लोग दूले हैं।' लड़की ने उत्तर दिया।

'अरी, मेरी नातिन को कहीं छू तो नहीं दिया?' बेचारी को असमय में स्नान करना पड़ेगा।'

नातिन बोली, 'दादी, इसने मुझे नहीं छुआ है।'

रसमणि उतेजित स्वर में नातिन को डांटकर बोली, 'क्या मैंने तुझसे कुछ पूछा है? मुझे इस लड़की का आँचल तुझसे छुआ लगा है। जा, घर में घुसने से पहले नदी में स्नान करके आ। इन नीच जाति बालों की संख्या में निरंतर हो रही वृद्धि के कारण उच्च जाति वालों का जीना हराम हो गया है।' दूले की लड़की को डाटती हुई बुढ़िया बोली, 'हरामजादी, अपने मुहल्ले से बकरी बांधने के लिए ब्राहमणों के मुहल्ले में आने की बात तेरी समझ में नहीं आयी?'

डरी और लज्जित हुई लड़की ने मेमने को छाती से चिपकाकर कहा, 'मैंने किसी को नहीं छुआ है।'

'ठीक है किंतु इस मुहल्ले में तेरा आना कैसे हुआ?'

दूस किसी घर की ओर अंगुली का संकेत करते लड़की ने कहा, “मेरी नानी द्वारा मुझे और मेरी माँ को घर से निकाल देने पर उन महाराज जी ने अपने घर के पिछवाड़े हमे रहने को स्थान दिया हे।”

किसी भी कारण से किसी की दुर्गति के मामले में प्रसन्न होने वाली तथा रुची रखने वाली रासमणि प्रसन्न हो उठी और पूर कहनी को जानने की इच्छा से बोली, “तुम्हारी नानी ने तुम लोगों को कब निकाला?”

“परसों रात को।”

“तो क्या तू एककौडी दूले की छोकरी है? अरी, बताती क्यों नही? यह तो मैं जानती हूँ कि तेरे बाप के मरते ही तेरी बुढ़िया नानी ने तुम लोगों को डर से चलता किया है। तुम छोटी जाति वालों का बेड़ा गर्क हो, अब क्या तुम लोग ब्राह्मण के मुहल्ले को भ्रष्ट करोगो? तुम लोगों का दिमाग खराब नहीं हो गाय? तुम्हारी माँ को कौन इस मुहल्ले में लाया है? ऐसी मुर्खता रामतनु के दामाद के सिवाय और किसी के द्वारा तो की नहीं जा सकती। साला घर-जमाई बनकर ससुर की सम्पति पर ऐश कर रहा है। पता नहीं साला क्या सोचकर भंगी-चमारों को इस मोहल्ले में ले आया है।”

इसके बाद रासमणि ने संध्या को आवाज दी, “बेटी संध्या, क्या घर में ही हो?”

खाली पड़ी धरती के उस ओर रामतनु के घर की खिड़कि है। उस खिड़की से बाह मुह निकालकर उन्नीस-बीस वर्ष की एक सुन्दर-सलोनी लड़की बोली, “कौन पुकार रहा है?” रासमणि को देखकर, “अरे, नानी है,” कहती हुई संध्या घर से बाहर आ गयी ओर बोली, “बात नानी, क्यों शोर मचा रही हो?”

रासमणि बोली, “बिटिया, तेरे नाना तो कुलीन ब्राह्मण थे। तेरे बाप को यह क्या सूझी जो ब्राह्मणों के मुहल्ले में शुद्रों को बसा दिया? क्या यह सब निन्दनीय कार्य नहीं है?”

इसके बाद अपने गाल पर हाथ रखकर हैरान प्रकट करती हुई नानी संध्या से बोली, “जरा अपनी माँ को इधर भेज। देखती हूँ कि जगद्धात्री इन्हें निकालने को सहमत होती है तो

ठीक, नहीं तो चटर्जी भैया से जाकर गुहार लगाऊंगी। पता चलेगा कि नामी-गिरामी जमींदार भी कुछ करते हैं या नहीं?”

संध्या ने चकित भाव से पूछा, “नानी, किसे निकालने को परेशान हो रही हो?”

“अपनी माँ को बुला, उसके सामने सारी बात कहूंगी।” इसके बाद अपनी नातिन की ओर संकेत करती हुई रासमणि ने कहा, “यह लड़की मंगल के दिन बकरी की रस्की लांध गयी और दूले की लड़की से छू गयी।”

संध्या ने बुढ़िया की नातिन से पूछा, “क्या तुझे दूले की लड़की ने छू लिया था?”

सहमी हुई बुढ़िया के पास खड़ी दुले की लड़की ने उत्तर दिया, “दीदी मैंने किसी को नहीं छुआ।”

रासमणि की नातिन ने भी समर्थन में कहा, “मुझे किसी ने नहीं छुआ।”

क्रोध से उत्तेजित रासमणि दोनों को डांटती हुई बोली, “झूठ बोलते हुए तुम्हें शर्म नही आती? मैंने अपनी आँखों से देखा की दूले की लड़की का आँचल तुझसे छुआ है।”

नातिन बोली, “नहीं, नानी, वह मुझसे दूर थी।”

रासमणि बिगड़ उठी और चिल्लाकर बोली, “हरामजादी, झूठ बोलती है, जाओ, नदी में नहाकर आओ, घर चलने पर मैं तेरी खबर लेती हूँ।”

संध्या हंसकर बोली, “नानी, नहीं छुआ, तो असमय में बेचारी को क्यों नहाने पर विवश कर रही हो?”

जली-भूनी रासमणि बोली, “लड़की को नहाना ही पड़ेगा, किन्तु तेरे पिताजी ने अपने ही मुहल्ले में शुद्रों को बसाकर कौन-सा पूण्य कर्म किया है? धर-जमाई को अपनी मर्यादा में रहना चाहिए। उसके ऐसे कार्य का भला कौन समर्थन करेगा?”

अपने पिता के विरुद्ध बुढ़िया द्वारा लगाये जा रहे आरोपों से क्षुब्ध होकर संध्या तीव्र स्वर में बोली, “हम अपने घर में कुछ भी करें, हमें कौन रोक सकता है? मैं पूछती हुँ कि तुम्हें क्यो ईर्ष्या हो रही है?”

“किसे क्या कष्ट हो रहा है, यह देखना हो तो, मुझे चटर्जी बाबू को सारी बात बतानी होगी।”

संध्या बोली, “नानी, तुझे किसने रोका है? जिसे कहने को तेरा जी चाहे, कह दे। वह बड़े आदमी है, तो क्या हुआ? क्या हम किसी से उधार मांगकर खाते हैं?”

रासमणि आप से बाहर होकर बोली, “गेखो, इस छोटी-सी छोकरी की कितनी लम्बी जबान हैं। मैं गोलोक चटर्जी को कहने की बात कह रही थी। तुम लोगों ने शायद उनके महत्त्व को पहचाना नहीं।”

कोलाहल सुनकर जगद्धात्री बाहर आ गयी। उसे देखकर रासमणि अग्नज्वाला के समान धधकने लगी। अपनी चीख और चिल्लाहट से सारे मुहल्ले को सुनाती हुई रासमणि बोली, “जगद्धात्री, तुझे पता है कि तेरी लड़की के विचार कितने उच्च हैं? खूब पढ़ी-लिखी है न! कहती हे कि इस गोलोक चटर्जी की कोई परवाह नहीं है। क्या हम उनके बाप-दादा का दिया खाते हैं, जो हमारा दाना-पानी बन्द कर देंगे या हमें गाँव से बाहर निकलवा देंगे? हमने शुद्रों को इस मुहल्ले में स्थान देकर कुछ भी बुरा नहीं किया है। कोई बड़ा होगा, तो अपने लिए होगा! हमें अपने किये पर कोई पछतावा नहीं।”

कुपित और चकित हुई जगद् धात्री ने तीखे स्वर में लड़की से पूछा, “क्यों री, क्या तुने यह सब कहा है?”

संध्या बोली, “मेरे कहने का अभिप्राय किसी को अपमान करना नहीं था।”

हाथ मटकाती हुई रासमणि बोली, “तो क्या उनका सम्मान कर रही थी? अरी, कहा है, तो मुकरती क्यों है।”

अचानक रासमणि अपनी उग्रता छोड़कर मुदृ-स्वर में बोली, “जगद धात्री, मैंने तो शास्त्र की बात कही थी कि मेरी नातिन ने मंगल के दिन बकरी की रस्सी को लांधकर ठीक नहीं

किया। इस पर संध्या ने पूछा, बीच सड़क पर किने बकरी बांध रखी थी? मैंने इसे बताया कि यह दूले की लड़की का काम था और उसी का आँचल मेरी नातिन को छु गया। मैं अपनी नातिन को नहाने को कह रही थी। मैं संध्या से बोली, बेटी, यदि तेरे बाबू जी इन दूले-डोमों को इस मुहल्ले मे न बसाते, तो यह अनर्थ क्यों होता? छोटी जात वालों को भला अचार-विचार का ध्यान कहां रहता है? बूढ़े गोलोक चटर्जी प्रायः उधर से आते-जाते हैं। उन्हें पता चलेगा, तो वह क्रुद्ध हो जायेंगा। जगद् धात्री, मैंने केवल इतना ही कहा, इस पर तेरी लड़की ने मुझे क्या-क्या नहीं सुनाया? खाली पीटने की कसर रह गयी है। क्या बड़ों के सामने लड़की का ऐसे असभ्य वचन मुंह से निकलना अच्छी बात है? क्या लड़कियों को यह शोभा देता है?”

माँ ने क्रुद्ध स्वर में बेटी से पूछा, “क्या तूने यह सब कहा है?” लड़की द्वारा इनकार किये जाने पर उत्तेजित माँ बोली, “तो क्या तुम्हारी नानी झूठ बोल रही है?”

रासमणि भी क्रोध से उबलने लगी और बोली, “ऐ छोकरी बोलते वक्त जो मुंह में आया, बोलती गयी है, और अब मुकरती है कि मैंने नहीं कहा। क्या मैं तुम्हारी शत्रु हूँ, जो तुम पर मिथ्या आरोप लगाऊंगी?”

संध्या धबरा गयी, फिर भी संभलकर बोली, “माँ तुझे अपनी बेटी पर विश्वास है, तो ठीक है, नहीं है, तो मैं क्या कर सकती हूँ? तुम्हारी दृष्टिमें नानी अधिक प्रामाणिक है, तो उसी की मानो।”

यह कहकर संध्या किसी अन्य प्रश्न को दागे जाने की आशंका से जल्दी से खुले दरवाजे से भीतर चली गयी। दोंनो महिलाएं लड़की के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार पर विस्मत हुई, एक-दूसरे का मुंह देखने लगी। इस बीच दूले की लड़की भी मौका देखकर मेंमने को छाती से चिपकाकर वहाँ से भाग खड़ी हुई।

जली-भूनी रासमणि कठोर शब्दों में बोली, “कहना अच्छा तो नहीं लगता, फिर भी कहे बिना रहा नहीं जाता। अब तो तूने अपनी आंखों से अपनी लड़की की करतूत देख ली। यदि

कहीं ऐसी तेज न होती, तो क्या कुलीन परिवार की लड़की अभी तक कुंआरी बैठी रहती? इसकी आयुं की लड़कीयां तो चार-पाँच बच्चों की माँ बनी बैठी हैं।"

जगद् धात्री भला क्या उत्तर देती? उसकी चुप्पी से रासमणि भी शान्त हो गयी। फिर थोड़ी देर में बोली, "जगदधात्री, मैंने सुना है कि चक्रवर्ती का छोरा अब भी तेरे घर आता रहता है, तूने उसे छूट दे रखी है? क्या यह सब सत्य है?"

जगदधात्री चिन्ता और संकोच से मुंह न खोल सकी।

रासमणि बोली, "पुलिन की अम्मा ने जब मुझे यह सब कहा, तो मैं उससे लड़ पड़ी। मैंने कहा, हरिहर बनर्जी की नातिन और रामचन्द्र की लड़की जगदधात्री क्या कभी किसी शूद्र के छोकरे को अपने घर में घुसने दे सकती है? जगदधात्री तो कायस्थों के घर पैर रखने से घबराती है, कोई शूद्र लड़का उसके घर में घुसने का साहस कैसे कर सकता है?"

अपना हीत चाहने वाली तथा समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए प्रयत्नशीर इस बुढ़िया के सामने जगदधात्री भला कैसे मुंह खोलती? कोमल और धीमे स्वर में बोली, "मौसी, तुम तो जानती हो कि बचपन से उसका हमारे घर में आना-जाना है और वह मुझे चाची कहकर पुकारता है। तुम्हारी बात तो ठीक है, किन्तु एकदम रोकना भी तो अच्छा नहीं लगता, इसलिए वह कभी-कभ भूले-भटके, साल-छः महीने एक-आध बार ही आता है। फिर बिना माँ-बाप के अनाथ छोकरे पर दया भी आ जाती है, इसीलिए मुंह से न कहते नहीं बनता।"

सुनकर उफनती हुई रासमणि बोली, "जगदधात्री, मैं तो ऐसी दया और सहानुभूति का समर्थन नहीं करती। मैं तो इसे भर्त्सना-योग्य ही कहूंगी।"

क्रोध की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाने से रासमणि कांपने लगी थी। बड़े प्रयत्न से अपने को संभालने के उपरान्त वह बोली, "उस मनचले छोकरे को शायद तू भोला-भाला और मासूम समझती है? तुझे मालूम नहीं कि वह कितना बदमाश है। ऐसा पाजी पूरे इलाके में दूकरा नहीं होगा। चटर्जी बाबू ने छोरे को बुलाकर वजीफे का प्रलोभन छोड़कर शरीफ आदमी की तरह रहने के लिए खूब समझाया था। उन्होंने विलायत जाने की जिन न करने को बहुत

कहा, किन्तु उसने उनकी कहां सुनी, बुढ़े का मजाक उड़ाता हुआ छोकरा बोला,“विलायत जाने से जाति भ्रष्ट होती है, तो हो जाये। मैं गोलोक की तरह भेड़-बकरीयों को विलायत भेजकर पैसा नहीं कमा सकता आर न ही मैं अपने समाज का शोषण कर सकता हूँ।” यह सब कहकर बुढ़िया बोली- गोलोक जैसे परम वैष्णव को खरी खोटी सुनाने वाले का तो मुंह नोच लेना चाहिए था। गोलोक सीधा आदमी है न, नहीं तो दो-चार जड़ दिये होते और बांह-बाजू तोड़ दिये होते।”

जगदधात्री बोली, “मौसी, मैंने तो अरुण को कभी किसी की निन्दा अथवा चुगली करते नहीं देखा।”

“तो क्या मैं और चटर्जी भैया झूठ बोलते है?”

“तुम लोग झूठ क्यो बोलने लगे? मैं तो लोगों की सामान्यतः किसी बात को बढ़-बढाकर कहने की प्रवृत्ति की बात कर रही थी।”

“जगदघात्री, क्या लोगों के पास केवल दूसरों की चर्चा करने का ही एक काम रह गया है, विलायत जाकर किसने कौन-सा किला फतहे कर लिया? वहाँ से किसानों की विध्याके सीख आने पर हंसी आती है। क्या अपने देश में किशान, नदी या खेती नहीं होती, जो इसे सीखने के लिए विलायत जाना आवश्यक था? अब उससे पूछो कि क्या वह हल चलायेगा? राम-राम ब्राह्मण जन्म को बेकार गंवाने से पहले उसकी मृत्यु क्यों नहीं हो गयी?”

जगदधात्री को अब यह चिन्ता सताने लगी कि मौसी की ऊंची आवाज को सुनकर तमाशा देखने की शौकीन मुहल्ले की स्त्रियों का कही जमघट न लग जाये। यह शान्त स्वर में अनुरोध करते हुए बोली, “मौसी, बाहर खड़ी थक गी होंगी। भीतर चलकर आराम से बैठो न।”

“नहीं काफी देर हो गयी हैं। अब बैठने का समय नहीं है। नातिन को नहलवाना भी तो है। हरामजादी दूले की छोकरी उसे छुकर भ्रष्ट जो कर गयी है।”

नातिन बोली, दीदी, जब तू बातें कर रही थी,. उसी बीच वह निकल गयी है, किन्तु उसने मुझे छुआ बिल्कुल नहीं।"

"फिर मुकर रही है, शैतान छोकरी। हाँ जगदधात्री, देखो, तुमसे कहे जा रही हूँ, अपने मुहल्ले में शुद्र को बसाना अच्छी नहीं। जमाई-राजा को बता देना।"

"मौसी, अवश्य कहूंगी। कहना भी क्या, इन्हे कल ही निकाल बाहर करती हूं। इनके रहने से अपने को भी कम परेशानी नहीं है। ये लोग रहेंगे तो ताल-तलाब का पानी बिगाड़ेगे, फिर शाम-सवेरे इनका दिखाई देना भी तो शुभ नहीं।"

प्रसन्न होकर बुढ़िया बोली, "बेटी अपनी जाति और अपने धर्म को बचाने के लिए इनका अलग रहना ही अच्छा है। आजकल के लड़के-लड़कियां इस बात को न समझें, तो क्या किया जा सकता है? उस दिन गोलोक चटर्जी मुझे कहने लगे कि संध्या का बात अपनी बेटी को पढ़ा-लिखा रहा है। रासो, इन्हें समझा, लड़कियां पढ़ने लिखने लगी, तो अनर्थ होते देर नहीं लगेगी"

डर से कांपती हुई जगदधात्री बोली, "क्या सचमुच चटर्जी मामा यह सब कह रहे थे?"

"अरी गाँव के मुखिया और समाज के प्रधान को तो यह सब कहना ही पड़ता है। अब मुझे ही देखो, मेरे काला अच्छर भैंस बराबर है, परन्तु फिर किस शास्त्र की जानकारी मुझे नहीं है? है कोई माई का लाल! जो यह कह सके कि रासमणि का एक भी कोई आचरण शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध है। इसे ही देख लो, लल्ली द्वारा बकरी की रस्सी को लांधते देखकर मैंने उसे टोका और कहा, अरी लड़की, मंगल के दिन तू यह कैसा अनर्थ कर रही है? क्या किसी पण्डित में मेरी बात को काटने का दम है? मैंने अपने माँ-बाप से यह सब सीखा है। हाँ, अपनी नयी रोशनी में पली लाड़ली से पूछो क्या उसे इस तरह की बातों की थोड़ी भी जानकारी है?"

जगदधात्री ने कहा, "मौसी, थोड़ी देर बैठोगी, तो लड़की को बुलाऊंगी।"

रासमणि देर हो जाने की बात कहकर नातिन को आगे करके चल दी, किन्तु दो-चार डग भरने के बाद लौट पड़ी और बोली, “जगदधाती, ऐसे श्रेष्ठ वर को हाथ से जाने दिया तूने?”

“मौसी, अभी हाथ में तो रखा हुआ है, किन्तु एक तो सम्पत्ति के नाम पर उसके पाक घर-द्वार कुछ भी नहीं है, दूसरे, उसकी आयु भी कुछ अधिक है।”

चकित होकर रासमणि बाली, “उसके पास घर-सम्पत्ति नहीं है, तो क्या हुआ? तुम्हारे पास तो सब कुछ है। तुम्हारा कोई लड़का तो है नहीं, लड़की भी यही एक है, फिर किसे देना है? इसी लड़की और दामाद को ही तो अपना सब कुछ देगी। कुलीन परिवार के लड़के की भी आयु कभी देखी जाती है? चालीस-बयालीस भी कोई आयु है क्या? तू जानती है न कि वय रसिकपुर के जयराम मुखर्जी का धेवता है, धेवता। जगदधात्रा, लड़के की उमर तो देख रहा हो, किन्तु क्या अपनी लड़की की उंमर पर भी ध्यान दिया है? यदि अब भी नाज-नखरा करती रहोगी, तो क्या लड़की कुंआरी नहीं रह जायेगी?”

जगदधात्री बोली, “मौसी, अकेले मेरे चाहने से क्या होता है? लड़की का बाप भी...।”

पूरी बात सुनने का धीरज न दिखाती हुई रासमणि बीच में बोल उठी, “लड़की का बाप क्यो नहीं मानेगा? जब उसका विवाह हुआ था तो उसके पास कौन-सी सम्पत्ति थी? फिर तुम्हारे घर में अरुन का आना-जाना, पूरा-पूरा दिन डटे रहना, सुना है कि हुक्का-पानी भी चलता है। जवान लड़की के घर में रहते ये लक्षण अच्छे नहीं। अच्छा घर-वर मिल जाने पर देर करना समझदारी नहीं। सोचकर देखो, तुम्हारी छोटी बुआ गुलाबी सारी आयु कुंआरी ही रह गयी न? तेरे बाप की दोनों बड़ी और मझली कुंआरी रह गयी। तेरे माँ-बाप ही काशी जाकर न रहने लगते, तो तुम्हारा विवाह कहां से होना था? काशीवास करती समधिन को ज्यों ही सही घर-वर मिल गये, त्यों ही उसने तुम्हारे हाथ पीले कर दिये। बीच में कोई टांग न अड़ाये, यह सोचकर उसने किसी को कानों-कान खबर नहीं होने दी। अब मानती है या नहीं, उसने अच्छा किया, नहीं तो कौन जाने, विवाह होता या न हता? अब, तू ज्यादा सोच-विचार मत करना जल्दी से लड़की को उसकी ससुराल पहुंचा दे।”

इसके बाद नातिन से बोली “चल बेटी, चल देर हो गयी है। जगदधात्री, और अधिक कहने के लिए अब मेरे पास समय नहीं है, किन्तु फिर भी तुम्हें सावधान करना अपना कर्तव्य समझती हूँ। देख, खिचतान से ज्यादा मलेजोल बढ़ाने, लड़की के साथ उसका हंसी-मजाक करने देने का परिणाम सुखद नहीं होगा। गाँव में बात फैल गयी, तो लड़का मिलना कठिन हो जायेगा। यह तो तुम भली प्रकार जानती हो कि लोगों को दूसरो के घर को फूंककर तमाशा देखना बहुत अच्छा लगता है।”

इस प्रकार बड़बड़ाती हुई रासमणि नातिन को आगे करके जा रही थी कि जगदधात्री ने उसे रुकने के लिए आवाज दी और बोली, “टोकरी-भर-बैंगन-लौकी आये है, दो-चार लेती जा। जरा रुक, मैं भीतर से लाती हूँ।”

जगदधात्री के भीतर जाने पर रासमणि बोल उठी, “अच्छा अभी से बैंगन आने लगे?” नातिन की ओर उन्मुख होकर रासमणि बोली, “अरी, खम्भे की तरह स्थिर खड़ी है, भाग के जा और बैगन लेकर आ। अच्छा, तब तक मैं धीरे-धीर चलती हूं, जल्दी से लौट के आ।”

प्रकरण 2

धागे को दांत से काटकर संध्या बोली, “माँ, अभी बाबू जी तो आये नहीं।”

“जानती हूँ, मुफ्त में लोगों का इलाज करने वाले तेरे बापू को समय को तथा अपन खाने-पीने का ध्यान ही कहां रहता है? तुम्हारा साथ देने को मैं तो हूँ। तुम्हे बाबू जी की प्रतीक्षा में भूखा मरने की कोई आवश्यकता नहीं।”

बिना उत्तर दिये संध्या पूर्ववत् काम करने लगी।

चिन्तित माँ ने पूछा, “क्या सी रही है, कुछ पता तो चले?”

अनिच्छा से अस्पष्ट स्वर में संध्या बोली, “कुछ नहीं, केवल दो बटन टांक रही थी।”

“पता है, पिता कि चिन्ता करने वाली बेटी जो ठहरी, इसीलिए मैं अपनी धोती की बात ही नहीं करती। पिता की किस कमीज का बटन टूट गया है, किस धोती का पल्लू फट गया है

और किस कपड़े में दाग लग गया है तथा कौन-सा जूता गन्दा हो गया है, इन सबकी चिन्ता जितनी तू करती है, वैसी तो शायद किसी दूसरी लड़की का मिलना दर्लभ ही होगा, किन्तु मैं पूछती हूँ कि अपनी बाबू जी की देखभाल के अलावा तुझे और भी कुछ करने को है या नहीं?”

हंसती हुई संध्या बोली, “माँ, बापू तो इन सब त्रूटियों की ओर ध्यान ही नहीं दे पाते।”

“ध्यान तो तब दें, जब उन्हें लोगों का मुफ्त इलाज करने से फूर्सत मिले। अच्छा, यह बता कि क्या दूले की पत्नी और पुत्री चली गयी है?”

“माँ, क्या उन्हें यह मुहल्ला छोड़कर जाना नहीं था?”

“किस समय गयीं, क्या लोगों को छूकर और उनकी जाति-धर्म आदि बिगाड़कर गयीं या नहीं? अरी, क्या तू उठेगी नहीं, जो फिर से सीने-परोने में जुट गयी है?”

“माँ, तुम चलो, मैं अभी आती हूँ।”

“इस बीमारी में भी तुम्हें जो ठीक लगे, वही कर। बेटी, मैं तो तुम्हें और तुम्हरे बाबु जी को कुछ कहना बेकार समझती हूँ। मैं तो इस घर से तंग आ चूकी हूँ और सास के पास काशी जाने की सोच रही हूँष।”

क्रोध से भरी जगदधात्री यह कहती हुई पीतल के कलश को उठाकर पीछे के तालाब से पानी भरने चल दी।

सिर झुकाकर संध्या हल्का-सा मुस्करा दी। माँ की बात का उसने उत्तर ही नहीं दिया। उसकी सिलाई समाप्त हो चुकी थी। अतः वह सई-धागा आदि समेटकर किसी डिब्बे में रख रही थी कि उसे पिता के आने का पता चला। घर में प्रवेश करते प्रियनाथ के एक हाथ में दवाइयों का बक्सा है और दूसरे हाथ में होम्योपैथिक दवाइयों से संबंधित पुस्तकें है। घर में घुसते ही वह उच्च स्वर में बोले, “बेटी, जरा दवा के बक्से को थामना। क्या करूं, क्या न करू, समझ में नहीं आता, मेरी तो जान ही मुसीबत में फसी है।”

झटपट उठ खड़ी हुई संध्या ने पिता के हाथ से पुस्तकें लेकर एक ओर रख दीं। बरामदे में पहेले से बिछी चटाई पर अपने पिता को बिठा दिया और पंख से हवा करने लगी। पिता के स्वस्थ हो जाने पर वह बोली, “बाबू जी, आज इतनी देर क्यों लगा दी?”

“देर, क्या कहती हो? मुझे तो नहाने-धोने के लिए भी फुर्सत नहीं मिलती। जिस रोगी के पास नहीं जाता, वही नाराज हो जाता है। असल में, रोगी का विश्वास हे कि प्रियनाथ की औषधि से ही उनका रोग निवृत्त हो सकता है। यह विश्वास भले ही सच्चा हो अथवा झूठा, किन्तु है तो सही, फिर प्रियनाथ मुखर्जी तो एक है, चार-छः तो नहीं, जो सबसे पास एक साथ जा सके। मैं अपने रोगियों से नन्द मित्रा के पास जाने को कहता हूँ। भले ही वह निपुण न हो, तो भी प्रैक्टिस करता है किन्तु सबका एक ही उत्तर होता है-मुखर्जी धन्वन्तरी को छोड़कर किसी दूसरे के पास भला कौन जाये? अब मैं उन्हें भला क्या कह सकता हूँ? मजे कि बात यह है कि नुस्खे को भी कोई रोगी याद नहीं करता। प्रतिदिन मुझे सभी रोगियों के लिए बार-बार सिर खपाना पड़ता है। नुस्खे को याद रखना भी तो आसान नहीं होता, अन्यथा सभी लोग डॉक्टर न बन जाते?”

संध्या बोली, “बाबू जी, सब ठीक है, अब कोट-कमीज उतारकर सहज को जाइये।”

“उतारता हूँ बेटी! पहले आज की बात तो सुना पट्ठे ने बिना सोचे-समझे रोगी को पल्सटिला दे डाला। प्रैक्टिस करने पर भी पट्ठे ने इस दवाई के प्रभाव के बारे में विचार नहीं किया, रोगी को मुझे संभालना पड़ा। अब पुस्तक देखकर तो इलाज नहीं किया जाता। कुछ कण्ठस्थ भी किया जाता है, कुछ बुद्धि और कुछ अनुभव से भी काम लिया जाता है। संध्या बेटी, जरा पुस्तक खोल, मैं तुझे पल्सटिला के संबंध में लिखा पढ़कर सुनाता हूँ।”

“बाबू जी, आपको सबह कण्ठस्थ है, पुस्कत खोलकर देखने की क्या आवश्यकता है? आपके खा-पी लेने के बाद ही मैं आपसे बात करूंगी।”

“कण्ठस्थ होने की तो ठीकत है, फिक भी पुस्तक दिखा तो सही।”

“नहीं, बहुत देर हो गयी है, पहले तेल-मालिश करा लो, नहीं तो माँ आकर बिगड़ेगी।” कहकर संध्या ने उचककर देखा कि माँ नहाकर आ तो नहीं रही है। इसके बाद पिता के मना करने पर भी वह प्याली में तेल लेकर उनके पैरों में लगाने लगी।

अपनी धुन में खोये मुखर्जी बाले, “बेटी, जरा रुक जाती, तो पुस्तक देख लेता।”

“वह बूढ़ा, संध्या देख लेना, वह हरगिज नहीं बचेगा और फिर मैं हरामजादे प्राण के जेल भिजवाकर रहूंगा। उस साले का काम ही मेरे रोगियों को बहकाना है। पांच के चाचा को मैंने सोच-समझकर औषधि दी और मेरे पीछे प्राण उसके पास पहुंचकर उससे बोला- देखूं, क्या औषधि दी है प्राणनाथ ने?”

संध्या ने क्रुद्ध होकर पूछा, “फिर क्या हुआ?”

प्रियनाथ अत्यन्त उतेजित स्वर में बोले, “साला, पाजी, हरामी, गधा, मेरी दी हुई दवा को गटागट पीकर बोला- यह दवा थोड़े ही है, यह तो पानी है। इससे रोग थोड़े मिटता है। अब मैं तुम्हें दवा देता हूँ, प्रियनाथ पीकर दिखाये। असल में उसने रोगी को कैस्टर आयल दे दिया था। रोगी ने मुझे ललकारा-आप प्राण की दवा पीकर तो दिखाओ?”

धबराई हुई संध्या ने पूछा, “कहीं आपने दवा पी तो नहीं ली?”

“नहीं बेटी, नहीं, किन्तु इस प्रण के कारण दोपहर तक भटकता रहा, किन्तु एक भी रोगी मेरे पास नहीं फटका। मैं इस साले पर अवश्य मुकदमा ठोकूंगा।”

क्रोध और दुःख के कारण संध्या की आँखे गीली हो गयीं। वह अपने भोले-भाले पिता को इस संसार के आघातों, उत्पातों और उपद्रवों से बचाना चाहती थी। अतः वह कोमल, मधुर और शांत स्वर में बोली, “बाबू जी, यदि रोगी आपकी दवा नहीं लेना चाहते, तो आपको इस गरमी में गली-गली भटकते फिरने की क्या आवश्यकता है? क्या आपको मालूम नहीं कि आपके घर पर न होने के कारण घर से कितने रोगी निराग लौट जाते है?”

संध्या के इस कथन में एक प्रतिशत भी सत्य नहीं था। गाँव के दीन-दुःखी घर पर दवा लेतने आते हैं, तो संध्या के पास ही आते हैं। उन्हें शायद प्रियनाथ के डॉक्टर होने की

जानकारी ही नहीं होगी। हाँ, यह बात अलग है कि संध्या द्वारा दी गयी दवा अचूक सिद्ध होती है। सुनने में तो यहाँ तक आया ही रोगी प्रियनाथ के घर पर न होने की पक्की जानकारी के बाद ही संध्या के पास आते है, किन्तु पिता की प्रसन्नता के लिए उसे मिथ्या भाषण में कोई संकोच नहीं।

प्रियनाथ ने संध्या के कथन को सत्य मान लिया और परेशान होकर बोल, "हाँ, निराश लौट गये, कौन थे वे, क्या नाम था उनका, किस समय आये थे ओर किधर चले गये? क्या तुमने उन लोगों के उनका नाम-धाम कुछ पूछा था?"

अपने को लज्जित अनुभल करती हुई संध्या बोली, "बाबू जी, हमें किसी से उसका नाम-धाम पूछने की क्या आवश्यकता है? जिसे गरज हो, वह लौटकर आयेगा।"

"तुम लोगों की इस मुर्खता से तो मैं परेशान हो गया। यदि उनका नाम-धाम पूछ लिया होता, तो तुम लोगों की क्या हानि हो जाती? मैं अभी उनके पास पहुंच जाता और मेरी दवा की एक ही खुराक से उनका रोग दूर हो जाता।"

तेल मलने में लगी संध्या कुछ न बोली।

प्रियनाथ ने पूछा. "क्या वे फिर किसी समय आने को कह गये है?" "शायद शाम को आयें?"

"शायद, तुम अपनी गलती नहीं मानोगी। मान लो, बेचारे किसी कारण न आ सके और फिर विपिन के हत्थे चढ गये। बदमाश, पाजी प्राण भी तो मेरे रोगियौं को फंसाने में गला रहेता है? कहीं इन दोनों को तो टोह नहीं लग गयी? मुझे यह अच्छा नहीं लग रहा है। क्या घर में मुठ्ठी-भर चना-चबेना नहीं था? उन रोगियों को खाने को देकर रोक लिया होता। जब तक मैं स्पष्ट निर्देष न दूं, किसी को तब तक कुछ सूझता ही नहीं। कोई अपनी बुद्धि से काम लेता ही नहीं है। अरे, कौन झांक रहा है, भीतर चले आओ भाई! अरे राममय! यह क्या तुम तो लंगडा रहे हो?"

प्रियनाथ के स्नेह और सम्मान से प्रभावित एक अधेड़ आयु का किसान भीतर आंगन मैं आ उपस्थित हुआ। वह बड़ी बेपरवाही से बोसा, "डाक्टर साहब, मैं ठीक हूँ, कुछ नहीं हुआ।"

“तुम अपने लंगड़ाने को कुछ होना समझते ही नहीं। संध्या, तेल मलना छोड़। यह अर्निका का केस है। राममय! तुम्हें रोग कि गंभ्भीरता को समझना चाहिए।”

प्रियनाथ के पांव दिखाने के आदेश पर राममय ने करुण दृष्टि से संध्या की और देखते हुए कहा, “दीदी, कल गिर गया था और पैर में मोच आ गयी थी।”

संध्या की और देखकर प्रियनाथ बोले, “मैंने पहली दृष्टि में बता नहीं दिया था कि यह अर्निका का मामला है। अच्छा भाई,. बताओ कि तुम गिरे कैस?”

“दरवाजे के पास के पतनाले के ऊपर वाले तख्ते को लड़कों ने हटा दिया था, मुझे इसकी जानकारी नहीं थी, अनमना-सा उसमें गिर पड़ा और मोच आ गयी।”

प्रियनाथ अनमना शब्द को मानव-स्वभाव का अंग बताकर उसकी शास्त्रीय व्याख्या करने में जुट गया और फिर पूछा, “इसके बाद क्या हुआ?”

“महाराज, फिर क्या होना था, उसी समय से दर्द से बुरी तरह कराह रहा हूँ। धरती पर बैर नहीं रखा जा रहा है।”

संध्या बोली, “बाबू जी, बहुत देर हो गयी है। रोगी को अर्निका देकर चलता करो।”

प्रियनाथ बोले, “संध्या बेटी, धीरज रख, केस पूरी तरह समझने तो दे। नुस्खा निश्चित करना क्या मजाकसहै, जल्दबाजी की तो बदमान हो जाऊंगा। हाँ, भाई, इस समय दर्द कैसा है?”

“बड़े जोर की टीस उठाती है।”

“मैंने यह नहीं पूछा। मैं जानना चाहता हूँ कि किस ढंग का दर्द है-धिसने-जैसा, मलने-जैसा, सूई चुभने-जैसा या फिर बिच्छू के काटने-जैसा? कुनकुन करता है या झनझनाता है?”

“जी हाँ महाराज, झनझन करता है?”

“फिर क्या होता है?”

“फिर क्या होता है, दर्द के मारे बुरा हाल है।”

“क्या कहा, मरे जाते हो?”

“और नहीं तो क्या? लंगड़ाकर चलता हूँ। धरती पर पांव नहीं धरा जाता। यह मरना नहीं, तो क्या है? शैतान लड़के न बात सुनते हैं और न ही मनाही मानते हैं। उस तख्ते से खेलते हैं। किसी और दिन फिर से गिर गया, तो उठ नहीं पांऊंगा। अब बहुत पूछताछ होली, मझे काफी काम है। दवा दीजिये, ताकि मैं चलूं।”

संध्या बोली, “बाबू जी, दो बूंद अर्निका दे दूं।”

हंसकर प्रियनाथ ने कहा, “नहीं, बेटी, यह अर्निका का केस नहीं है, विपिन शायद यही दवा देता। यह तो एकोनाइट का केस है। इसे चार बूंद एकोनाइट दे दो।”

आश्चर्य से दोनों आँखें फड़कर संध्या बोली, “एकोनाइट।”

“हाँ, बेटी, इसे मरने का डर है, अतः मुझे यही दवा ठीक लगती है। महात्मा हेरिंग कहते है-रोगी का इलाज करना चाहिए। मृत्यु-भय को मिटाने की दवा एकोनाइट है। विपिन हरामजादा, इस अन्तर और गरहाई को क्या समझेगा? फिर भी हरामजादा अपने को कविराज समझता-मानता है। राममय, शीशी लेकर संध्या के साथ जाओ। इस दवा को दो-दो घण्टे के बाद केवल चार बार लेना। यदि प्राण दवा दिखाने को कहे, तो उसके हाथ में शीशी बिल्कुल न देना। यह बदमाष दवा पी जायेगा और खाली बोतल में दवा के नाम अरण्डी का तेल भर देगा।”

सनू. राममय को दवा देने के लिए खड़ी हुई संध्या पिता के मुंह से पेट में मरोड उठने की शिकायत सुनकर बोली, “लगता है कि आपने सारा कैस्टर औयल पी लिया है?”

“नहीं बेटी नहीं, पहले लोटा तो पक़ड़ा।”

संध्या ने दृढ स्वर में पूछा, “बाबू जी, आप सच-सच क्यों नहीं बताते?”

“अरी छोड़ इस बहस को, पहले लोटा पकड़ा।” लोटा उठाकर वह घर के पिछले दरवाजे से बाहर निकल गये।

राममय ने संध्या से दवा देने का अनुरोध किया। वह बोली, “जीजी, अपने पिताजी बाली दवा रहने दो, अभी आर्निका की दो बूंदे ही दे दो।”

संध्या बोली, “तुम क्या समझते हो कि मैं पिताजी से कुछ अधिक जानती हूँ?”

लज्जित होकर राममय बोला, “मैं यह नहीं कहता, किन्तु मुखर्जी बाबू की दवा तेज होती है। घर में बेटे को कल से दस्त लगे हैं, बाबू जी की दवा के लिए मैं जाते ही उसे भेज दूंगा।”

दुःखी स्वर में “अच्छा” कहकर संध्या राममय को बगल वाले कमरे में ले गयीग़।

ठाकुरद्वार के लिए तालाब से मटका भरकर लौटी जगदधात्री ने मटके को रखकर क्रुद्ध स्वर में आवाज दी, “संध्या, अरी ओ संध्या!”

कमरे से संध्या ने उत्तर दिया, “आती हूँ माँ।”

जगदधात्री बोली, “अरी, तेरे बाबू जी अभी तक लौट हैं या नहीं? नहीं लौटे, तो क्या आज भी ठाकुरजी की पूजा बन्द रहेगी।”

बाहर आकर संध्या बोली, “बाबू जी तो काफी देर से आ गये हैं।”

“तो फिर तालाब पर क्यों नहीं दिखे?”

संध्या अपने पिता के स्वभाव जानती थी कि वह दौड़कर किधर चले गये हैं, किन्तु सोचकर बोली, “हो सकता है कि वह आज नहाने के लिए नदी पर चले गये हों। काफी देर हो गयी है, अब तो लौटने वाले ही होंगे।”

जगदधात्री को विश्वास नहीं आया, वह और भी अधिक उतेजित हो उठी और क्रुद्ध स्वर में बोली, “तुम्हारे पिताजी से तो मैं बेहद परेशान और तंग आ चुकी हूँ। मेरी सहनशक्ति चुक गयी है। अब उन्हे कहो या तो वह कहीं चले जाये, नहीं तो मैं ही कही चलती बनूंगी।

कितनी बार कहा था कि पूजारी जी आज नहीं आयेंगे। अतः जल्दी से आ जाइयेगा, किन्तु इनके कान पर जूं तक नहीं रेंगती। बेटी, सोच, अभी तक ठाकुरजी का स्नान नहीं हुआ। जानती है, इन्होंने कल क्या किया? विराट नाई का सारा ब्याज माफ कर दिया और मूल के चुकाता होने की रसीद लिख दी।"

घबराई हुई संध्या ने पूछा, "माँ, तुम्हें कैसे पता चाल?"

जगदधात्री बोली, "भौजाई के साथ तालाब पर नहाने आई विराट की बहिन ने बताया है।" हंसकर संध्या बोली, "माँ, सुना है कि भाई-बहिन में झगड़ा चल रहा है। तुम्हें भड़काने के लिए लड़की ने झूठ बोल दिया होगा।"

रुष्ट हुई जगदधात्री बोली, "संध्या, तू सभी मामलों में अपने पिता का बचाव क्यों करती है? सारी बात सुन, घर में किसी के बीमार होने की झूठी बात बोलकर विराट नाई तेरे पिता को बुला ले गया। इन्हे धन्वन्तरी कहकर इनकी खूब आवभगत की। जमींदार और दानवीर कर्ण, कलयुग का बलि कहकर इन्हे फुला-फुलाकर कुप्पा बना दिया। उसके मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर यह लोट-पोट होते जा रहे थे। बस,. उसने मौका देखकर विनती की, और फिर क्या था जोश में आकर इन्होंने उसका मनचाहा कर दिया। पति के ऐसे पागलपन को देखकर गले में गागर बांधकर नहीं में डूब मरने का मन करता है। आजकल तो इनकी बेपरवाही की हद हो गयी है। अब बेटी, तू ही बता कि इस स्थिति में मैं किस प्रकार घर गृहस्थी चला सकती हूँ?"

संध्या ने पूछा, "माँ विराट पर कितना ऋण था?"

"ठीक से तो मैं क्यां जानूं? फिर बी दस-बारह रुपये से कुछ अधिक ही होंग। इन्हें लुटाने में कुछ सोचना थोड़ा पड़ता है।"

इसी बीच गीली धोती पहने आकर प्रियनाथ संध्या से अंगोछा देने को चिल्लाने लगे। इसके साथ ही वह संध्या को किसी रोगी के लिए कोने में पड़ी एक विशेष औषधि लाने को भी कहने लगे।

धधकती आग की तरह क्रुद्ध जगदधात्री बोली, “मैं तुम्हारे इस बक्से को कूड़ेदान में फेंकती हूँ। ससुर के अन्न पर पलते हो और अपने को जमींदार कहते हो! तुम्हें तो शर्म से चुल्लु-भर पानी में डूब मरना चाहिए। विराट नाई का ऋण छोड़ने के लिए तुम्हें किसने कहा था? किसकी अनुमति से तुम दूले डोम को इधर बसाने को ले आये हो? क्या तुमने हाड़-माँस जलाने का पक्का इरादा कर रखा है? इससे अच्छा तो यह है कि या तो मुझे नदी में धक्का दे दो या फिर तुम इस धर से निकल जाओ। अब मैं तुम्हें सहन नहीं कर सकती।”

संध्या उच्च और तीखे स्वर में बोली, “माँ, क्या यह दोपहरी बातें करने का समय है? थोड़ा सोच-विचार तो कर लिया करो।”

जगदधात्री भी उसी तल्खी से बोली “क्या तेरा बाप कभी सवेरे दिखाई देता है? जब आता इसी समय है, तो फिर सच-झूठ इसी समय तो कहूंगी। अपने पिता को कह दे कि ठाकुर जी की पूजा करके कुछ खा-पी ले और फिर इस घर से चलता बने। मैंने इसे सारी उम्र बिठाकर खिलाने का ठेका नहं ले रखा है। मैंने बहुत सहा है, अब और नहीं सह सकती, बिल्कुल नहीं सह सकती।” कहती हुई जगदधात्री की आँखो से आँसू टपकने लगे और वह अपने कमरे में चली गयी।

प्रियनाथ अपनी सफाई में कहा, “क्या उस नाई के बच्चे से बहुत कहा कि जमींदार होने का मतलब इतने सारे रुपये छोड़ देना थोड़े होता है, किन्तु मेरी कौन सुनता है, वह तो मेरे पैरों से लिपट गया और छोड़ता ही नहीं था। मैंने भी सोचा कि जब बेचारे के पास पेट भरने के लिए दमड़ी तक नहीं है, तो फिर ऋण का भुगतान कहां से करेगा? मैं उसे अमुक औषधि...।”

रोती बिलखती संध्या ने कहा, “ बाबू जी, माँ से परामर्श किये बिना आप ऐसे निर्णय लेते ही क्यों हो?”

“मैं कुछ न करने का निश्चय करता तो हूँ, किन्तु जब देखता हूँ कि प्रियनाथ द्वारा कुछ किये बिना गाड़ी आगे सरकती ही नहीं, तो मेरे से मुकरदर्शक बने रहना नहीं हो सकता।”

पूरी बात सुने बिना संध्या वहाँ से चल दी। सूखी धोती और अंगोछा पिता को सौपती हुई बोली, “बाबू जी, अब और देर मत करो, जल्दी से ठाकुर जी की पूजा कर लो। मैं अभी आती हूँ।”

संध्या अपने कमरे में आ गयी और सिर पोंछते हुए प्रियनाथ ठाकुर जी के कमरे में चल दिये। इस बीच पेट में फिर ऐंठन की शियकाय करते हुए वह प्राण की दवा पीने के लिए पछताने लगे।

प्रकरण 3

जगदधात्री और संध्या के सामने रासमणि जिस गोलोक चटर्जी की प्रशंसा के गीत गाते थकती न थी और जिसे साक्षात धर्मावतार और न्यायमूर्ति बताने में गौरव का अनुभव कर रही थी, वह प्रातःकालीन पूजा-पाठ से निबटकर बैठक में आ गये हैं और नौकर द्वारा रखे हुक्के को गुड़गुड़ा रहे हैं। आँख मीचकर तमाखू पीते तोंदिल बाबू ने भीतर द्वारा के खुलने की आवाज सुनी, तो बोले, “कौन?”

ओट मे खड़ी महिला बोली, “बिना खाये-पिये क्यो चले आये हो? क्या मेरी किसी गलती पर रुष्ट हो?”

गोलोक बोले, “क्रोध और अभिमान के दिन तो तुम्हारी दीदी के जाने के साथ लद गये। अब मुझे किसी पर क्रोध करने का अधिकार ही कहां हैं?”

इसी के साथ गहरी-लम्बी सांस छोड़कर वह बोले, “अच्छा, गोकुल भगवान के तिरोभाव का दिन है, अतः प्रातः उपवास करके सायंकाल को ही मेरा खाना-पीना होगा। शाम को भी थोड़ा-सा गंगाजल और दूध के सिवाय कुछ नहीं ले सकूंगा। इस तरह भगवान के ध्यान में दिन कट जाने में ही मैं अपने जीवन की सार्थकता मानता हूँ।”

ओट में खड़ी होकर बात करती स्त्री ने द्वार खोलकर निश्चित कर लिया कि कमरे में कोई तीसरा नहीं है। बेखटके भीतर चली आयी। यह स्त्री विधवा है, किन्तु इसकी आयु अधिक नहीं है और देखने में भी सुन्दर एवं आकर्षक है। चौबीस-पच्चीस साल की इस युवती ने

सफेद रेशमी धोती पहन रखी है। इसने हाथों मे कंगन नहीं पहन है, किन्तु गले में सोने का हार पहन रखा है, जिसके पेण्डुलम में इसके इष्टदेव की मूर्ति है। यह स्त्री मुस्कारकर गोलोक से बोली, "आपको तो सदैव मजाक सुझता है, किन्तु आपको यह तो सोचना चाहिए कि लोग मेरे बारे में क्या कहेंगे? मुझे अब सदा के लिए यहाँ तो रहना नहीं है। जिसकी सेवा के लिए आयी थी, उसे तो भगवान ने अपने पास बुला लिया, अब मुझे अपने बूढ़े सास-ससुर की सेवा भी तो करनी है, इसके लिए अपने गाँव लौटना है।"

गोलोक हुक्का। गुड़गुड़ाते हुए गंभीर स्वर में बोले, "अपनी घर गृहस्थी के लिए रिश्ते-नाते की किसी को बलपूर्वक रोककर नहीं रखा जा सकता है। यदि अपना भाग्य ही फूटा न होता, असमय में गृहलक्ष्मी ही क्यों दगा दे जाती? मधुसूदन, मधुसूदन! ठीक है, जाना चाहती है, तो चली जाना। बहिन की सेवा तुमने जी-जान से की है, इसके लिए तुम गाँव में दृष्टान्त स्थापित कर चली हो।"

ज्ञानदा चुप रही और गोलोक ने धोती के पल्लू से अपनी आँखें पोंछी और फिर वह चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाने लगे। थोडी़ देर बाद वह गंभ्भीर स्वर में बोले, "सती लक्ष्मी, इतने दिन लेकर आयी थी, सो चली गयी, उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है, किन्तु मेरी घर-गृहस्थी तो उजड़ गयी। सारी लड़कियां अपने ससुराल में अपना घर संभाल रही हैं, उनका मुझे कोई चिन्ती नहीं, किन्तु चिन्ता है, तो ईस छोटे बच्चे की है। यह बिना माँ का लड़का कैसे जी पायेगा? इसे कौन संभालेगा? केवल इसी की चिन्ता है।"

रुंधे गले से ज्ञानदा बोली, "आप इतना अधिक घबराते क्यों है? इसकी भी कोई व्यवस्था हो जायेगी।"

उदास और बुझे स्वर में गोलोक ने कहा, "यही तो नहीं हो रहा, मधुसूदन, तुमहारा है सहारा है। अब मेरा मन न तो घर-गृहस्थी में आरो न ही जमींदार में रमता है। सब कुछ विष-सा लगता है। जितने दिन जीना पड़े, व्रत-उपवास और भोजन-पूजन में बीते-यही एकमात्र इच्छा है। एक समय मुट्ठी-भर भात मिल जाये, तो ठीक, न मिले, तो ठीक, किन्तु उस नन्हें का ध्यान आते ही प्राणों पर बन आती है। मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है।"

ज्ञानदा की आँखे भी अश्रुपूर्ण ही उठी। गोलोक की स्त्री उसकी ममेरी बहिन होने पर भी सगी-बहिन-जैसी थी। दोनों में गहरा अनुराग था। इसीलिए अपनी असाध्य बीमारी में उसने ज्ञानदा को अपने पास बुलाया था और ज्ञानदा बी काम छोड़कर भागी चली आयी थी। रुग्णा की सेवा में उसने दिन-रात एक कर दिया था। किन्तु उसे बचा न सकी। जाते समय लक्ष्मी अपने दस साल के बेटे को अपनी इस बहिन की गोद में डाल गयी।

रुंधे गले से ज्ञानदा बोली, “मेरा यहाँ सदा के लिए रहना तो नहीं सकेगा। लोग-बाग क्या कहेंगे, जरा यह भी तो सोचिये।”

“इस गाँव में किसी को तुम्हारे विषय में मुंह खोलने की हिम्मत होगी, तो कोई कुछ कहेगा।” इससे अधिक भला यहा कहते और किसी प्रकार ज्ञानदा को आश्वस्त करते? स्वयं ज्ञानदा भी इस गाँ मे गोलोक के प्रभाव से भली प्रकार परिचित थी।

गोलोक बोले, “इस गाँव किसी आदमी द्वारा मेरी आलोचना करने का अर्थ होगा-अपना राशन-पानी समाप्त समझना। अतः यहाँ के लोगों द्वारा कुछ कहे जाने के बारे में तो कभी सोचा ही नहीं। तुम्हारी बहिन तुम्हे बहुत चाहती थी, इसका प्रमाण यह है कि मरेत समय यह अपनी सन्तान तुम्हे सौंप गयी। मुझे भी तो सौप सकती थी।”

अपने आंसुओं को बलपूर्वक रोकती हुई ज्ञानदा बोली, “जीजा जी, यह सब तो ठीक है, किन्तु आप भी तो देखिये कि मेरे बूढ़े सास-ससुर जीवित है और मेरे सिवाय उनकी सेवा करने वाला दूसरा कोई नहीं हैं।”

ज्ञानदा को कथन को महत्व ने देते हुए गोलोक ने बड़ी उपेक्षा से कहा, “अरी, तेरह साल में विधवा हुई, पति को अपनी आँखो से देखा तक नहीं और फिर वह जीवित भी नहीं, फिर भी उसके माँ-बाप के प्रति अपने कर्तव्य की दुहाई देती हो। काहे का तुम्हारा कर्तव्य? छोड़ो इस बेकार की बात को।”

“जीजा जी, पति न रहने पर जीते-जी उनके माता-पिता की सेवा के कर्तव्य से मुक्त तो नहीं हो जाती।”

कुछ देर तक चुप रहने के बाद गम्भीर स्वर में गोलोक बोले, “तो फिर ठीक है, हमें भगवान के भरोसे छोड़कर चली जाओ, किन्तु छोटी मालकिन, एक बात मत भूलना।”

“छोटी मालकिन” सम्बोधन पर नाराजगी प्रकट करती हुई ज्ञानदा बोली, “जीजा जी, क्यो आप मेरी खिल्ली उड़वाने पर तुले हुए हो? लगा सुनकर मुस्कराते हैं। क्या आप मुझे मेरे नाम से नहीं पुकार सकते?”

“ठीक है नाम लेकर पूकारूंगा।”

यह कहते हुए गोलोक के उज्जवल चेहरे पर विषाद की काली छाया धिर आयी। एक लम्बी आह भरकर अपने को सुनाते हुए-से धीमी आवाज में गोलोक बोले, “जिसकी छाती दिन-रात प्रचण्ड धधक रही हो, क्या वह कभी किसी से मजाक कर सकता है? मेरे सम्बन्ध में हंसी-मजाक की बात करना, तो मुझ पर मिथ्या आरोप लगाना होगा। फिर भी, कभी-कभी, खैर जाने दो, किसी को नाराज करने का क्या लाभ हैं? आज तक, जब किसी को भी अप्रसन्न करने से बचता रहा हूँ, तो आज फिर ऐसी मुर्खता किसलिए? मैं जानता हूँ कि जीवन कांटो पर चलना है, विषय-भोगों का परिणाम भंयकर है, संसार भी तो दुःखो का घर है। प्रभो, मधुसूदन, मुझे कब अपने चरणों में स्थान दोगे? कब कष्टों से मुक्ति दिलाओगे?”

बिलखती और आँसू बहाती ज्ञानदा चुपचाप देखती रही।

गोलोक बोल, “देखो ने छोटी मालकिन, लड़की वाले पीछे पड़े हैं, उनका तर्क भी सही है कि दस साल का बच्चा बिना माँ के कैसे पलेगा? फिर मेरा शेष जीवन भी बिना गृहस्वामिनी कैसा कटेगा? बाल सफेद अवश्य हो गये है, किन्तु ये मेरी आयु बड़ी होने के सूचक नहीं, अपितु दुःख-शोक की अधिकता के ही सूचक है, इसलिए असमय में ही सफेद हो गये हैं। फिर भी, मुझे दोबारा बन्धन में पड़ना अच्छा नहीं लगता, किन्तु बिना इसके निर्वाह भी तो नहीं। मेरे लिए एक और खाई है, तो दूसरी और कुंआ है।”

उदास चेहरे से नकली हंस हंसती हुई ज्ञानदा बोली, “इसमे सोचना-विचारने की क्या बात है, विवाह कर ही लीजिये।”

"अरी, तुम क्या कहती हो, इस आयु में विवाह कर लूं? तुम-जैसी लक्ष्मी क् रहेत क्या मैं इस बारे में सोच भी सकता हूँ? हाँ, एक बात है, साली को बिना कोई नाम दिये सदा के लिए घर में रखा भी नहीं जा सकता। तुम्हारी बहिन तो तुम्हे अपनी इच्छा बता ही गयी है। तुम उसके वचन का मान रख लो।"

किसी को भीतर झांकते देखकर गोलोक ने पूछा, "कौन है?"

नौकर ने सूचित किया, "चोंगदरा साहब आये हैं।"

मुंह बिगाड़कर गोलोक ने कहा, "अब काम-धन्धे मन कहा लगता है। दिन-रात काम, पैसा, बहुत हो लिया, मैं किसे अपनी छाती फाड़कर दिखाऊं कि कैसी प्रचण्ड ज्वाला धधक रही है। मधुसूदन! कब इस झंझट से मुक्त करोगे।" फिर नौकर की ओर उन्मुख होकर वह बोले, "खड़ा-खड़ा क्या कर रहा है? जा, उसे भीतर आने को कहा।"

ज्ञानदा उठ खड़ी हुई और जाने से पहले पूछने लगी, "तो क्या सचमुच कुछ नहीं खाओगे?"

ज्ञानदा बोली, पर्व है, तो क्या हुआ? थोड़ा-सा दूध, फल और गंगाजल लेने में कोई दोष नहीं। आप जल्दी से आइये, मैं सब कुछ तैयार करती हूँ।" कहती हुई ज्ञानदा दरवाजा बन्द कर चली गयी।

इधर नौकर के पीछे एक शरीफ आदमी सामने के द्वार से कमरे में प्रविष्ट हुआ। गोलोक ने हंसकर उसका स्वागत किया और उसे अपने पास बिठाया। नौकर को आदेश किया, "भोलू, शुद्रों वाला हुक्का तैयार करके इनके आगे पेश कर।"

गोलोक के चरण-स्पर्श करके लम्बी सांस छोड़ता हुआ विष्णु चोंगदार बोला, "बड़े बाबू, क्या पूछते हो, सांस लेकने की फूरकत नहीं। बड़ा भारी झंझट है, फिर भी पाँच सौ और तीन सौ की दो खेपें तो किसी तरह भिजवा दी हैं।"

दक्षिणी अफ्रीका में सेना की खुराक के लिए भेड़-बकरियों की आपूर्ति में यह चोंगदार मुखर्जी बाबू का हिस्सेदार है। ठेके की शर्त के अनुसार इन्हें तीन हजार पशु भेजने हैं। अतः

आठ सौ संख्या सुनकर गोलोक चिन्तित हो उठे और बोले, “तीन हजार ठेका और कुल आठ सौ की आपूर्ति! कैसी बात करते हो?”

चिन्तित स्वर में चोंगदार बोला, “बाबू साहब, भेड़-बकरियां मिलती ही नहीं, तो क्या किया जाये? आठ-सौ को जुटाने में भी नाक में दम आ गया। हाँ, रामपुर में हरेन ने पाँच-सात दिु में लगभग सौ पशु रेल से भेजने का विश्वास दिलाया है। हमें तो सिर्फ रेलगाड़ी से पशुओं को उतारना है और जहाज पर चढ़ाना है। तीन महीने का समय मिला हुआ है। अतः अभी से काहे चिन्ता? सब ठीक हो जायेगा।”

आश्वस्त होकर गोलोक ने कहा, “बन्धु, मझे तो तुम्हारा ही भरोसा है। मेरी अवस्था तो अब तुम जानते ही हो। मैं तो गृहस्थ होते हुए भी एक प्रकार से सन्यासी हूँ। तुम्हारी भाभी के चले जाने के बाद रुपये-पैसे में मोह ही नहीं रहा। मैं तो केवल उस अबोध बालत के लिए जी रहा हूँ।”

चोंगदार बोला, “यह सब तो स्वाभाविक है। इस बार रुपया तो अहमद कमायेगा। ससुरे को सात सौ का ठेका मिला है। वह और बी बड़ा ठेका ले सकता था, किन्तु रुपये का जुगाड़ नहीं कर सका।”

“धीमे-से गोलोक ने पूछा,“क्या उसे भैंसों का ठेका मिला है?”

“हाँ, और क्या? भेड़-बकरियों का सौदा होता, तो क्या मैं हाथ से जाने देता?”

मुंह पर हाथ रखकर, राम-राम, शिव-शिव कहते हुए गोलोक ने कहा, “सुबह-सबह एसी चर्चा ठीक नहीं। वह म्लेच्छ है, धर्म-अधर्म कुछ भी नहीं जानता, कमाने दो। क्या दस हजार कमा लेगा?”

“इससे कही ज्यादा। यदि लड़ई लम्बी खिंच गयी. तो लाला के वारे-न्यारे हो जायेंगे।”

गोलोक ने कहा, “उसे लगाना भी तो बहुत पड़ेगा? लगता है कि ठेके के दस्तावेज दिखाकर किसी लाला से कर्ज ले लेगा।”

चोंगदार बोला, “होने को तो सब हो सकता है। मुझसे तो कह भी रहा था...।”

जानने के उत्सुक गोलोक ने पूछा, “कितना रुपया मांग रहा था? क्या सूद के बारे में भी उसने कुछ बताया था?”

चोंगदार बोला, “चार पैसा तो निश्चित है, शायद इससे अधिक भी...।”

गोलोक बिड़ाकर बोला, “खुद तो एक के दो करेगा और सूद इतना थोड़ा देगा?” हाँ, यदि वह दस आना और छः आना (आज की भाषा में साठ प्रतिशत और चालीस प्रतिशत) की साझेदारी पर काम करना चाहे, तो उसे मेरे पास आने को कह देना।”

आशंकित चोगदार बोला, “क्या आप रुपया देंगे? यदि राज खुल गया तो...।”

गोलोक एकदम सावधान हो गया। संभलकर बोला, “मधुसूदन, रक्षा करो। मैं भी कहां बहक गया था? मैं रुपया क्यों देने लगा? उलये मांगे, तो बी मना कर दूंगा। राज खुलने वाली बात की चिन्ता भी मत करो। उसके और तुम्हारे सिवाय किसी को भी भनक क्यो पड़ने लगी? अच्छा, एक बात सोचो, बनिये से उधार लेकर कोई लड़की का ब्याह रचाये, मामला-मुकदमा करे या रण्डी नचाये, इससे लाला को क्या करना है? उसे तो केवल अपने रुपया लेके से ही गरज है, इसलिए सोचता हूँ कि मैं उस रुपया नहीं दूंगा, तो कोई दूसरा दे देगा। किसी का काम तो रुकता नहीं है।”

चोंगदार के मन के भाव को भांपने के लिए कुछ देर तक उसे चेहरे को ताकने के बाद गोलोक मुखर्जी बोले, “मैं रुपया देने की बात नहीं कर रहा था मैं तो एक साधारण प्रचलन की बात कर रहा था। वस्तुतः महाजन को भी आसामियों की आवश्यकता पड़ती है। मेरे बारे में तो तुम प्रारंभ से जानते ही हो कि ब्राह्मण का बेटा अपने धर्म-कर्म, सिद्धान्त और न्याय आदि के विषय में किनता दृढ़ है। अधर्म के लाख रुपये पर बी मेरी दृष्टि ही नहीं पड़ती। भगवान मधुसूदन पर आस्था रखने के कारण ही आज मैं पाँच-पाँच गाँ का अधिष्ठाता हूँ। एक ही वाक्य ब्राह्मण को शुद्र और शुद्र को ब्राह्मण बनाने का सामर्थ्य रखता हूँ। मधुसूदन, तुम्हारा ही भरोसा हैष एक बार जब बीमार पड़ा था, तब डॉक्टर जयगोपाल के सोडावाटर पीने के सुझाव को ठुकराते हुए मैंने साफ कहा था, मरने से डरकर

जीवित रहने के लिए गोलोक अधर्म-मार्ग पर कभी भूलकर भी पैर नहीं रखेगा। मैं उन केनाराम का बेटा और हरराम मुखर्जी का धेवता हूँ, जिनके चरणोदक को पीने के लिए भण्डार हाटी के राजा को पालकी और सेवक भेजने पड़ते थे।"

प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ चोंगदार बोला, "इसमें क्या संदेह है? आपकी कुलीनता और आचारनिष्ठा के तो संसार में डंके बजते हैं।"

प्रसन्न हुआ गोलोक लम्बी सांस लेकर बोला, "मधुसूदन, तेरा ही भरोसा है।"

जाते हुए चोंगदार को अपने पास बुलाकर गोलोक ने उसे अपने समीप बुलाकर धीरे-से कहा, "हाँ, हरेन से रेलवे की रसीद मांग लेना।"

स्वीकृति में सिर हिलाकर चोंगदार बोला, "जी, हुजूर!"

गोलोक बोला, "पाँच सौ, जमा तीन सौ, जमा पाँच सौ कुल मिलाकर हुए तेरह सौ और शेष रहे सत्रह सौ। बची अवधि में सप्लाई हो जायेगी न?"

गोलोक गोल, "इसीलिए तुम्हें मैंने पूरे पाँच हजार का ठेका लेने की सलाह दी थी, किन्तु तुम्हें अपने ऊपर भरोसा ही नहीं था।"

चोंगदार बोला, "यदि इतने पशु न जुटा पाता तो...।"

गोलोक ने विवाद करना ठीक न समझते हुए कहा, "चलो, जो सोचा, वही ठीक है। धर्म-मार्ग पर चलकर, तनाव लिए बिना जो मिले, उसे ही बहुत समझना चहिए। अधर्म से लाखों का मिलना भी गलत है। मधुसूदन, तेरा ही भरोसा है।"

चोंगदार के चले जाने पर ढ़ोगी मुखर्जी हुक्का गुड़गड़ाने लगे। इस बीच नौकरानी ने आवाज दी, "मौसी जी कब से प्रतीक्षा में बैठी हैं।"

"क्यों, सद्दी, क्या काम है उसे मुझसे?"

नौकरानी बोली, "थोड़ा-सा जलपान कर लेते तो...।"

हुक्का छोड़कर उठते हुए गोलोक ने कहा, “तेरी मौसी ने भी नाक में दम कर रखा है। उसका हुकुम माने बिना निर्वाह नहीं।”

लम्बी सांस छोड़ते हुए वह बोले, “गृहस्थ रहते हुए साधना करना कितना कठिन है? मधुसूद, तुम्हीं मार्गदर्शन करो, तुम्हारा ही सहारा है।”

प्रकरण 4

संध्या का स्वास्थ्य पिछले कुछ दिनों से बिगड़ता जा रहा है, पिता के उपचार से लाभ होना, तो दूर रहा, उलटे हानि हो रही है। जगदधात्री डॉक्टर विपिन से सम्पर्क करने को कहती और संध्या असहमति में झगड़ा करती। आज शाम संध्या द्वारा बनाये साबूदाना को अनमने भाव से निगल गयी; क्योंकि यह पथ्य उसे कभी रुचिकर नहीं रहा, किन्तु आज माँ उपालम्भ से बचने के लिए वह न चाहते हुए भी निगल गयी। वह इस तथ्य से भली प्रकार परिचित थी कि उसकी माँ का सारा ध्यान इस ओर टिका होगा कि लड़की ठीक से खाती है या नहीं। खाने से पहले वह किसी पुस्तक को पढ़ रही थी। ज्यों ही वह गोद में खुली पड़ी पुस्तक को समेटने लगी, त्यों ही उसने खिड़की से अपने को बुलाये जाने की आवाज को सुना। बाहर आकर उसने देखा कि सामने अरुण खड़ा आवाज लगा रहा था, “चाची घर पर हो?”

समीप आकर अरुण बोला, “हाँ, किन्तु तुम इतनी मरियल कैसे हो गयी हो? कहीं फिर से बीमार तो नहीं पड़ गयीं?”

“यही लगता है, किन्तु तुम भी तो मुझे स्वस्थ नहीं दिखते?”

हंसकर अरुण बोला, “जब दिन-भर नहाना-खाना कुछ भी नसीब नहीं हुआ तो चेहरे का मुरझाना तो निश्चित था, तुमने पैटर्न की फरमाइश की थी, पूरे दिन उसकी खोज में भटकता फिरा।”

यह कहते हुए अरुण ने अपने बैग से कागड का एक बण्डल निकालकर सन्ध्या को थमा दिया और बोला, “चाचा तो बाहर निकल गये होंग, किन्तु चाची दिखाई नहीं देती, वह कहां गयी है? पिछले शनिवार को घर न आने पर तुम्हारा सामान लाने में देर हो गयी।”

संध्या बोली, “स्टेशन से घर न जाकर सीधे इधर चले आये हो, ऐसी क्या जल्दी थी? घण्टे-भर बाद आते, तो क्या अन्तर पड़ जाना था?”

अरुण बोला, “मेरा खाना-पीना तो संध्या के बाद होगा, कोई जल्दी नहीं, किन्तु तुम्हारा जल्दी जल्दी बीमार पड़ जाना भारी चिन्ता का विषय है।”

“संध्या के बाद” शब्दों मे श्लेष था. छिपा अर्थ-था पहले संध्या खोयेगी, तभी तो अरुण-खा सकेगा। इस तथ्य को समझते ही संध्या के कान लाल हो उठे और ह्दय में आनन्द दौड़ गया, किन्तु ऊपर (बाहर) से संध्या ने अपने को ऐसा सामान्य दिखाया, मानो वह कुछ समझी ही न हो। फिर भी श्लेष का प्रयोग करती हुई संध्या बोली, “अब संध्या होने में बी कितना समय बचा है, अधिक देर करना ठीक नहीं, जाकर नहा-खा लो।”

हंसता हुआ अरुण उत्तर तो देना चाहता था, किन्तु सामने आ खड़ी चाची की मुखमुद्रा को देखकर चुप हो गया। क्रुद्ध जगदधात्री भुनभुनाती हुई कमरे से बाहर हो गयी। बाहर आने से पहेल लड़की से बोली, “बेटी, पहले मुंह रखे पान चबाना छोड़ो और थूककर बाहर फेंक दो, फिर जी-भरकर हंसी-मजाक करही रहो।”

चुपचाप खड़े अरुण न यह सब सुना, तो अपने को एकदम आहत अनुभव करने लगा। संध्या को माँ का कथन सही नहीं लगा। दोनों का चेहरा एकदम काला पड़ गया, मानो प्रकाश का स्थान संध्या के अन्धकार ने ले लिया हो। काफी देर तक हक्का-बक्का रहने के बाद संभली संध्या पान थूककर दुःखी स्वर में अरुण से बोली, “तुम अपने को अपमानित देखने के लिए इस घर में क्यों आते हो? क्या तुम हम लोगों का सर्वनाश करके प्रसन्न होओगे?”

कुछ देर की चुप्पी के बाद अरुण बोला, “संध्या, तुमने मुंह का पान थूक दिया है, इसका अर्थ है कि तुम मुझे सचमुच अछूत मानती हो।”

सहसा आँसू बहाती हुई संध्या बोली, “तुम्हारा न तो कोई धर्म है और न कोई जाति, किन्तु मैं पूछती हुँ कि तुमने मुझे क्यो छुआ है?”

चकित-विस्मित हुआ अरुण बोला, “संध्या, क्या कहती हो, मेरी कोई जाति और धर्म नहीं है?”

संध्या दृढ़ स्वर में बोली, “मैंने कुछ गलत नहीं कहा, तुम विलायत गये हो या नहीं? इसलिए तुम म्लेच्छ हो और इसीलिए तुम्हें उस दिन माँ ने पीतल के लोटे में पानी दिया था। क्या यह भी भूल गये हो?”

“नहीं, मुझे याद नहीं, किन्तु क्या तुम भी मुझे अछूच मानती हो?”

“मेरे मानने-न मानने से क्या होता है? तुम तो जिस दिन से लोगों की मनाही को इनकार कर विलायत गये हो, उसी दिन से सबकी दृष्टि में अछूत बन गये हो।”

अरुण बोला, “किन्तु मैं सोचता था...।”

“तुम क्या सोचते थे कि मैं बाकी लोगों से अलग हूँ?”

अरुक इसका कुछ भी उत्तर न दे सका, किन्तु कुछ देर बाद वह बोला, “इसका अर्थ हे कि मुझे अब इस घर में नहीं आना चाहिए, किन्तु मेरा तुमसे अनुरोध हे कि तुम मेरी उपेक्षा मत करो। मैंने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिससे लिए मुझे लज्जित होना पड़े अथवा पश्चाताप करना पड़े।”

संध्या बोली, “अरुण भैया! क्या तुम्हें भूख-प्यास नहीं सताती, जो बेकार में इतनी देर से मुझसे उलझ रहे हो?”

“मैं तुमसे भला क्यो उलझाने लगा? अपने से धृणा करने वाले से उलझने में भला कौन-सी समझदारी है?”

यह कहकर अरुण बाहर चला गया और पाषाण-प्रतिमा बनी संध्या एकटक उसे देखती रह गयी।

प्रसन्न होकर लौटी संध्या की माँ बोली, “अच्छा हुआ, जो चला गया, अब कभी इधर मुंह नहीं करेगा।”

संध्या को मानो बिजली का करण्ट लगा, “क्या कहा?”

माँ बोली, “बेकार में तुझे छू गया, जा कपडे बदल ले।”

बेटी के मन की प्रतिक्रिया को माँ समझ न सकी, इसीलिए बोली, “अरुण क्रिस्तान जो ठहरा, कपड़े जो बदलने ही होंगे। अरी, कोई विधवा अथवा वृद्ध, तो उससे छू जाने पर स्नान के बाद ही शुद्ध होती। उस दिन रासो मौसी....। माना कि वह अपने मुंह मिया-मिट्ठु बनती हैं, फिर भी, यह तो मानना ही पड़ेगा कि आचार की रक्षा में वह आदर्श है। दूले की छोकरी के द्वारा न छूए जाने की कहने पर भी मौसी ने नातिन को नहलाकर ही दम लिया।”

संध्या ने कहा, “ठीक है, मैं वस्त्र बदलकर आती हूँ।”

माँ आदर्श के महत्व पर भाषण झाड़ने जा रही थी कि पीछे से आ रही पुकार को सुनकर रुक गयी, “जगदधात्री! घर में हो ने!” कहते हुए गोलोक चटर्जी उसके घर के आंगन में आ खड़े हुए।

चटर्जी महाशय का स्वागत करती हुई जगदधात्री बोली, “अहोभाग्य, जो आज सुदामा की कुटिया में कृष्ण बनकर मामा पधारे है।”

जगदधात्री मुस्कारा तो रही थी, किन्तु रासमणि की बात के याद आते ही वह चिन्तित हो उठी। संध्या उठकर खड़ी हो गयी और गोलोक जगदधात्री की उपेक्षा करके संध्या की और उन्मुख होकर बोला, “कैसी हो संध्या? कुछ दुबली लग रही हो? स्वास्थ्य तो ठीक चल रहा है न?”

सकुचाती हुई संध्या बोली, “बाबा, मैं ठीक हूँ।”

माँ नकली मुस्कान चेहरे पर लाकर बोली, “मामा, वैसे तो लड़की ठीक है, किन्तु पिछले महीने से रह-रहकर ज्वर का आक्रमण हो जाता है। आज कितने दिनों के बाद सागूदाना खाया है।”

गोलोक बोला, “अच्छा तो यह बात है! अरे, विवाह न करके लड़की को कुंआरी रखोगी, तो यह सब होगा। जिसे अब तक दो-चार बच्चों की माँ होना चाहिए था, उसे तुमने कुंआरी रख छोड़ा है। कब इसका विवाह कर रही हो?”

गोलोक की बात को बदलती हुइ जगदधात्री बोली, “मैं ठरही औरत। तुम्हारे दामाद को इसकी चिन्ता ही नहीं है। वह तो अपनी डॉक्टरी में मस्त हैं। मामा, अपने पति के व्यवहार को देखकर तो मन में आता है कि झूठी मोह-माया छोड़कर काशी में सास के पास चली चाऊं। पीछे जो होना हो, होता रहे।” कहती हुई उसका गला रुंध गया और वह बिलखने लगी।

गोलोक ने पूछा, “वह पगला आजकल क्या करता है?”

जगदधात्री बोली, “वह ठीक से पागल बी तो नहीं, जो उन्हें घर में जंजीर से बांधकर रखूं वह न तो पागल है और न ही समझदार। मेरा जीवन तो इस घर में बर्बाद हो गया है।” कहती हुई अपने आँचल से आँसें पोंछने लगी।

सहानुभूति में गोलोक बोला, “इसमे तो कोई सन्देह नहीं, किन्तु बेटी, तुम भी तो अपनी लड़की के हाथ पीले करनेक को उत्सुक नहीं लगतीं। तुम सोचती हो कि स्वयं लड़के वाले तुम्हारे घर अलख जगायेंगे। बेटी, कुलीन परिवारो को यह सब शोभा नहीं देता। तुमने सुना ही होगा कि गंगायात्रा के प्रसग में भी कुलीनों ने अपने कुल-धर्म की उपेक्षा नहीं की। मधुसूदन, सबकी लाज रखना, तुम्हारा ही भरोसा है।”

जगदधात्री बोली, “मामा, अपसे यह किसने कहा कि हम भगवान के सहारे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे है? आज तक जब किसी कायस्थ ने भी पैर नहीं धरे, तो मैं भाग्य के सिवाय और

किसे दोष के सकती हूं? लड़की को कुएं में तो नहीं धकेला जा सकता, कुछ देखना तो पड़ता है।"

गोलोक बोला, "यह तो सही है। देखूंगा।"

जाने की इच्छा पर भी संध्या सिर झुकाये वही खड़ी रही। उसकी ओर देखकर धूर्त गोलोक बोला, "जगदधात्री, यदि तुझे लड़की के लिए स्वयं नारायण नहीं चाहिए, तो इसे मुझे क्यो नहीं दे देती? इस सम्बन्ध में कोई वाधा नहीं है। तुम्हारी लड़की रानी बनकर पूरे इलाके पर राज्य करेगी। क्यो नातिन! मेरे बारे में तुम्हारा क्या राय है?"

संध्या पूरी तरह चिढ़ गयी। अरुण और पिता के सम्बन्ध में माँ की बातों से वह पहले ही उखड़ी हुई थी, गोलोक के इस कथन ने उसके ह्दय में आग लगा दी। वह क्रुद्ध स्वर में बोली, "बाबा, अब तुम्हारी आयु चार जनो द्वारा उठाये जाने वाली घोड़ी पर चढ़ने की है। हाँ, तुम्हारे इस घोड़ी पर सवार होकर आने पर मैं फूलमाला अवश्य डाल दूंगी।" कहकर वह तेजी से भीतर कमरे में चली गयी।

लड़की की इस तीखी चोट से आहत गोलोक असन्तुलित होकर बोला, "लड़की तो तोप का गोला है। जगदधात्री, इस पर नियन्त्रण रखना। मैंने सुना है कि यह तो बाप को भी खरी-खोटी सूना देती है, किसी को नहीं छोड़ती।"

जगदयात्री को इस बात का पहले से डर था। बीच में उसे कुछ देर के लिए अवश्य लगा कि गोलोक मजाक कर रहा था। यदि लड़की सांप को बाम्बी से जबर्दस्ती न निकालती, तो वह शायद सारी बातचीत को मजाक में उड़ा भी देती, किन्तु अब तो स्थिति बिगड़ गयी थी। जगदधात्री गिड़गिड़ाती हुई बोली, "मामा लड़की नादान है, उसकी बात का बुरा न मानना। उसकी ओर से मैं माफी मांगती हूँ।"

गोलोक बोले, "मुझे उसका कथन अच्छा नहीं लगा और फिर तूने सुनकर भी उसे डांटा-डपटा नहीं। लगता है कि चींटी के पर निकलने लगे हैं। मधुसूदन तुम्हारा ही भरोसा है।"

जगदधात्री बोली, “मामा, तुम्हारे सामने मैंने जवान लड़की को डांटना ठीक नहीं समझा। अब उसकी एसी खबर लूंगी कि फिर किसी के आगे मुंह खोलने से पहले उसे दस बार सोचना पड़ेगा।”

गोलोक ने कहा, “जगदधात्री, मेरे कारण बेटी को दुर्गती न करना। नासमझ छोकरी पर घर-गृहस्थी का भार पड़ेगा, तो अपने-आप संभल जायेगी। अच्छा, यह बता कि अरुण अब भी इस घर में आता है?”

डरी हुई जगदधात्री को झूठ बोलना पड़ा, “नहीं तो।”

गोलोक ने कहा, “ठीक है, उसे मुंह न लगाना, लोग तरह-तरह की बातें बनाते हैं।”

संध्या बचपन से अरुण को भैया कहकर पुकारती है। अरुण के विलायत जाने से पहले दोनों काफी घनिष्ठता थी, किन्तु अरुण इतनी छोटी जाती का ब्राह्मण था कि जगदधात्री उसके साथ संध्या के विवाह का स्वप्न भी नहीं देख सकती थी। अरुण के विलायत से लौटने पर दोनों की निरन्तर और उतरोतर बढ़ रही घनिष्ठता और उनकी चढ़ती जवानी से जगदधात्री को दोंनो के एक-दूसरे को समीप आने की झलक मिलने लगी थी। फिर भी, इस सम्बन्ध के परिपुष्टि होने की सम्भावना न होने के कारण जगदधात्री विशेष चिन्तित नहीं हुई थी। अब दूसरों के मुंह से इस प्रकार के आरोप सुनने पर जगदधात्री के लिए इसकी अपेक्षा करना सम्भव न रहा। वह तीखे स्वर में गोलोक से बोली, “मामा, वैसे तो किसी के मुंह पर हाथ नहीं रखा जा सकता है, जिसके मुंह में जो आये, वह किसी के बारे में कुछ भी बक सकता है, किन्तु मैं पूछती हूँ कि लोग मेरी लड़की के ही पीछे हाथ धोकर क्यो पड़े हैं। क्या सारे गाँव के लोगों के पास यही एक काम रह गया है?”

हंसते हुए गोलोक ने कहा,“तुम्हारी शिकायत सही है, किन्तु दूसरों को कुछ कहने से पहले अपने को संभालने में ही बुद्धिमत्ता है।”

जगदधात्री इसका उत्तर देने ही जा रही थी कि उसने तालाब से नहाकर आती संध्या को देखा। उसके तन के कपड़े गीले थे, सिर के बालों से पानी चू रहा था। लगता था कि उसने सिर पोंछा तक नहीं है। इस स्थिति में लड़की को घर में प्रवेश करते देखकर गोलोक ने

चिन्तित स्वर में कहा, “जगदधात्री, तुम तो कहती थी कि लड़की ज्वर-पीड़ित है। शाम के समय इसे नहाना तो नहीं चाहिए था।”

जगदधात्री बोली, “मामा, आजकल लड़कियों का यही हाल है।” मन-ही-मन वह समझ गयी कि लड़की ने अरुण के अपमान करने का दण्ड़ किया है।

गोलोक बोला, “इस तरह की बेपरवाही का परिणाम भयंकर हो सकता है।”

“जो भी भाग्य में लिखा होगा, वह भूगतूंगी। मेरे बस में क्या है मामा?”

“यह तो ठीक है। अच्छा, यह बताओ कि इस घर में किसका शासन चलता है, तुम्हारा, तुम्हारे पति का या तुम्हारी लड़की का?”

“इस घर में केवल मेरी नहीं चलती।”

“तो फिर अपने पति से कह देना कि मुहल्ले से दूले-बाग्दियों को यथाशीध्र चलता करें। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो मुझे हस्तक्षेप करना पड़ेगाय़। फिर मुझे कहने न आना। मधुसूदन तुम्हारा ही सहारा है।”

क्रुद्ध और उग्र स्वर में जगदधात्री ने पुकारा, “सन्धो, इ्धर आना।”

कमरे में बाल पोंछ रही संध्या ने मुंह निकालकर पूछा, “माँ, क्या बात है?”

जगदधात्री बोली, “उन शुद्रों को तु हटायेगी या फिर कल नहाने से पहले झाड़ू मार-मारकर मैं उन्हें भगाऊं?”

“माँ, दुःखी, असहाय एवं दरिद्र लोगों पर हाथ उठाना कौन-सा वीरता का काम है? यह तो कोई भी कर सकता है। फिर भी, उनके रहने में आपको क्या आपत्ति है?”

गोलोक ने कहा, “आपत्ति की बात कहती हो, तो सुनो। परसों मैं घूम-फिरकर घर लौट रहा था, तो देखा कि स़ड़क पर खड़ी बकरी को वह लड़की माड़ पिला रही है। मांड़ छिटककर गिरना तो स्वाभाविक ही है न।”

गोलोक को अपने चेहरे पर ताकता देखकर समर्थन में बोली, “इसमें कोई संदेह थोड़ी हैं, मांड के छींटे तो पड़ते ही हैं मामा।”

गोलोक ने कहा, “अनजान में भले ही सांप का विष भी खा लिया जाये, किन्तु जान-बूझकर तो जीती मक्खी नहीं निगली जा सकती।”

संध्या की और उन्मुख होकर वह बोले, “नातिन, तुम्हारी बात अलग है। तुम्हारी आयु की लड़कीयां तो समय-असमय कभी भी स्नान कर सकती हैं, किन्तु मुझ-जैसे व्यक्ति के लिए तो यह सुविधाजनक नहीं हैं।”

अपने भीतर के उफान को दबाती हुई संध्या को कहना पड़ा. “हाँ. बाबा, यह तो सत्य ही है, किन्तु विचारणीय यह की बाबू जी ने जब उन निराश्रितों को आश्रय दिया है, तो उनके किसी दूसरे वैकल्पिक आवास की व्यवस्था किये बिना उन्हें उजाड़ना तो अन्याय होगा। इसके अलावा इस बाबू जी का भी अपमान ही कहा जायेगा।”

लड़की के इन तर्कों पर माँ को इतना क्रोध आया कि उसे लड़की से बात करना ठीक नहीं लगा। गोलोक ने कहा, “ठीक है, वैकल्पिक व्यवस्था भी कुछ कठिन काम नहीं। अरुण के घर के पीछे बहुत सारी धरती-परती पड़ी है। उसे इन शुद्रों को बसाने के लिए कह दे। बाग्दी-दूले शुद्र होने पर भी स्वधर्मी हिन्दू ही तो हैं। उसे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, इससे उसकी जात के जाने का कोई खतरा भी नहीं है।”

यह कहकर गोलोक माँ-बेटी के चेहरे पर ताकने और मन्द-मन्द मुस्कराने लगे। यह सुझाव जगदधात्री को उपयुक्त तो लगा, किन्तु अरुण के नाम पर अनाड़ी लड़की कहीं भड़की न उठे, इस आशंका से उसने कोई भी टिप्पणी करना ठीक नहीं समझा।

जगदधात्री की सोच सही थी। उत्तेजित लड़की उचित-अनुचित के विवेक को छोड़कर कठोर-कर्कश स्वर में बोली, “यदि जाति भ्रष्ट भी होती हो, तो इसकी चिन्ता अरुण भैया को नहीं है। जात-पात पर विश्वास न करने वाले इस बारे में सोचते ही कहां है?”

गोलोक ने हंसने की चेष्टा की, किन्तु उसका चेहरा बुझ गयाय़ वह झेंप मिटाने के लिए बोले, “इस विषय पर तुम्हारी उससे बातचीत होती होगी।”

खिलखिलाकर हंसती हुई संध्या बोली, “क्या बात करते हो, जब वह आप-जैसे बड़े लोगों को दो कौड़ी नहीं समझते, तो मेरे साथ कहां से बात करेंगे?”

यह कहकर वह प्रतिक्रिया अथवा प्रत्युतर की प्रतिक्षा किये बिना ही वहाँ से चलती बनी।

जगदधात्री से अपनी लड़की का आचरण सहन नहीं किया गया, इसलिए वह क्रुद्ध होकर बोली, “नादान लड़की, पराये लड़के पर मनगढंन्त आरोप क्यों लगाये जा रही हो? उसने मेरे साने आज तक ऐसी कोई बात नहीं की। इसके लिए मैं गंगा की शपथ लेकने को तैयार हूँ।”

पता नहीं, घर के भीतर घुसी संध्या ने सुना या नहीं सुना, किन्तु उसने उत्तर कुथ भी नहीं दिया। इस पर गोलोक ने कहा, “जगदधात्री, आजकल के सभी लड़के और लड़कीयां ऐसे ही हैं। तुम बेकार में ही परेशान हो रही हो। हम दो कौड़ी के हैं या लाख रुपये के हैं, यह तो तुम्हे समय बतायेगा, किन्तु आज तुम्हें यह चेतावनी देना आवश्यक समझता हूँ की इस तेज-तर्रार लड़की से जितनी जल्दी छुटकारा पा सकती हो, पा लो, नहीं तो हाथ मलती रह जाओगी।”

जगदधात्री गिड़गड़ाकर बोली, “मामा, मेरी अकल तो काम नहीं करती, तुम्हीं इस काम में मेरी कुछ सहायता करो न।”

गोलोक प्रसन्न भाव से सिर हिलाकर बोले, “ठीक है, अब मैं ही देखूंगा विचारणीय तथ्य यह है कि तुम्हारी लड़की है, यदि दूर ब्याही गयी, तो इसकी सूरत भी देखने को तरसती फिरोगी। समीप का लड़का मिल जाये, तो दो समय लड़की को देखकर जी ठण्डा कर सकोगी। इसलिए तुम्हें कहता हूँ कि लड़के की उम्र के पीछे मत जा। यह तो तुम जानती ही होगी कि कुछ पाने के लिए कुछ छोड़ना भी पड़ता है।”

भावुकता से आँसु पोंछती हुई जगदधात्री बोली, “मामा, मेरे ऐसे भाग्य कहां? किन्तु हाँ, यदि घर जमाई...।”

बीच में ही गोलोक बोल उठे, “अपने को ऐसी मन्दभाग्य क्यों कहती हो? घर-जमाई को तो यमराज समझना चाहिए, यदि कहीं से कोई गंवार-भोंदू फंसा बी तो गांजा-सुल्फा में सारी सम्पति फूंककर तुम्हे सड़क का भिखारी बना देगा।”

गोलोक के संकेत को समझकर तड़पती हुई जगदधात्री बोली, “मैं तो जीवन-भर के लिए तड़ना-जलना लिखा लाई हूँ मामा।”

मुस्कराकर गोलोक बोले, “उचित समय पर उचित काम न करने वाला सदैव अपने दुर्भाग्य को कोसते देखा जाता है।”

“जानती हूँ मामा, मैं सब जानती-समझती हूँ, किन्तु जरा यह भी सोचो कि एक अकेली स्त्री क्या कर सकती है?”

गोलोक बोले, “अब तुम अकेली नहीं हो, जब तुमने मुझे यह काम सौंपा है, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। सोच-विचारकर देखूंगा कि क्या किया जा सकता है। इस समय देर हो रही है, अतः अब जाना चाहूंगा।”

जगदधात्री बोली, “मामा, क्या खड़े-खडे चले जाओगे? दो पल बैठने का कष्ट नहीं करोगे?”

गोलोक बोले, “पूजा का समय निकला जा रहा हा, अब जाने दो, फिर किसी दिन आकर बैठूंगा।” कहते हुए वह बाहर चल दिये। जगदधात्री सम्मान दिखाती घर के दरवाजे तक उन्हे छोड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे चल दी।

प्रकरण 5

लोगों के मुक्त इलाज के प्रति समर्पित प्रयिनाथ प्रभात होते ही एक हाथ में डॉक्टरी की किताबें और दूसरे हाथ में दवाइयों का बक्सा थामे निकल पड़ते थे। आज उनके पीछे चलती हुई दूले की विधवा स्त्री खुशामद करती हुई चल रही थी। वह बोली, “महाराज! आपर

ठुकरा दोगे, तो हम बेंसहारा और असहाय लोग किधर जायेंगे? आपके सिवाय हमारा और कौन है?"

बात करने के लिए फुरसत न होने से प्रियनाथ चलते-चलते बोल, "नहीं, अब तुम लोग यहाँ नहीं रह सकते। मैं जाने गया हूँ कि तुम लोग अपनी सीमा में नहीं रह सकते। अच्छा, यह बता कि क्या तुमने गली में बकरी को माड़ पिलायी?"

आश्चर्य प्रकट करती हुई देले की माँ बोली, "महाराज, सभी को बकरियां घास चरती है या माड़ पीती है?"

प्रियनाथ उतेजित होकर बोले, "हरामजादी, मुझे मूर्ख बनाती है। बकरियां घास चरती है या माड़ पीती है?"

"महाराज, घास-पत्ते भी खाते है और माड़ भी पीती है।"

हाथ हिलाते हुए प्रियनाथ ने कहा, "नहीं अब तुम लोग यहाँ नहीं रह सकोग। आज हीं यहाँ से चलते बनो, स्वयं गोलोक चटर्जी ने देखा हे कि तुम लोगो ने ब्राह्मणों के मुहल्ले में बकरकी को मांड़ पिलाया। अब में तुम लोगों पर दया नहीं कर सकता। तुम दया के पात्र नहीं हो।"

आखिरी दांव चलाती हुई दूले की विधवा बोली, "महाराज, तो क्या मांड को नाली में बहा देना चाहिए?"

"हाँ, यही ठीक होगा। गाय को पिलाने की अनुमति तो दी जा सकती है, किन्तु बकरी को मांड पिलाना और वह भी ब्राह्मणों के मुहल्ले की गली में... राम-राम छिः छः। मुझे देर हो रही है, मुझे रोककर मेरा और अपना समय नष्ट मत को, आज ही इस महल्ले को छोड़कर चलते बनो।"

प्रियनाथ के पीछे चलती दूले की विधवा बिलखकर बोली, "महाराज, लड़की ने कल से अन्न का एक दाना भी नहीं खाया?"

प्रियनाथ रुक गये और मुड़कर बोले, “दवा तो चल रही है न? क्या लड़की की जी मचल रहा है या उस दस्त रहे है?”

“हाँ, महाराज, हाँ।” दूले की बहू बिलखकर बोली।

“क्या कारण है? क्या पेट फूल गया है और भूख मर गयी है?”

“महाराज, भूख से तो बिलख रही है?”

“हूँ यह भी एक भयंकर रोग है। तब बताया क्यों नहीं?” जाच-परखकर एक खुराक वही दे देता।”

थोड़ी देर तक इधर-उधर करती गरीब विधवा बोली, “महाराज! दवाई की आवश्यकता नहीं। थोड़े-से चावल मिल जाते तो पकाकर भूखी लड़की को खिला देती।”

सुनकर रुष्ट हुए प्रियनाथ भड़कते हुए बोले, “ससुरी को दवा नहीं, चावल चाहिए। तुम लोगों के लिए मैंने जैसे भण्डार खोल रखा है। चल, हट, मेरी नजरों से दूर हो जा, पाजी कही की।”

निराश लौट रही उस बेचारी को बुलाकर प्रियनाथ ने कहा, “खाने को नहीं है, तो संध्या को क्यों नहीं बताया? उससे मांग लिया होता।”

गरीब महिला ने सिर उठाकर प्रियनाथ की ओर देखा और फिर वह चुपचाप चल दी।

प्रियनाथ बोले, “संध्या की माँ से कुछ मत कहना। घाट के पास खड़ी होकर संध्या की प्रतीक्षा करना औचर उसके आने पर उससे कहना। हाँ, किसी के बीमार पड़ने पर सबसे पहले मुझे खबर करना, विपिन के पाक मत जाना।” फिर किसी और को देखकर वह बोले, “अरे कौन, त्रिलोकी हो क्या? घर में सब स्वस्थ हैं ने?”

त्रिलोकी ने पूछा, “क्या आपके पास...?”

“बोलो, मुझसे क्या चाहते हो?”

“जमाई बाबू, बड़ा नाला पार कनेक में लोगो को काफी कष्ट होता है, उस पर मचान का एक पुल बनाना है, उसके लिए बांसो की आवश्यकता पड़ेगी। क्या आपसे बांस के झुरमुट से...?”

क्रुद्ध स्वर में बीच में ही प्रियनाथ बोल उठे, “मैं बांस नहीं दूंगा। क्या गाँव में और लोग नहीं है? उनसे ले लो न।”

अब तक चुप खड़ा बूढ़ा षष्ठीचरण बोला, “जमाई राजा, आप नाराज न हों, तो एक बात कहूं। इस गाँव में आप-जैसा उदार दानी दूसरा कोई है ही कहां, जिससे फरियाद की जाये? आप दया करेंगे, तो सारे गाँव को आराम हो जायेगा और मुंह से भले न कहें, किन्तु मन-ही-मन तो आपको असीसेंग।”

कुछ देर सोचने के बाद प्रियनाथ ने पूछ, “क्या सचमुच लोगों को आने-जाने में कष्ट होता है?”

त्रिलोकी बोला, “महाराज, रोज एक-गो के हाथ-पैर टूटते हैं। डर से मारे प्राण हथेली पर रखकर ही लोगों को चलना पड़ता है।”

प्रियनाथ बोले, “जगदधात्री को पता चलेगा, तो बहुत बिगड़ेगी।”

पष्ठीचरण बोला, “आप कहें, तो हम सब जाकर माँ जी के पैर पकड़ लेते है।”

कुछ देर तक सोच-विचार में डूबे प्रिय बाबू बोले, “लोगों को सचमुच कष्ट होता है, तो ले लीजिये, किन्तु संध्या की माँ को इसकी भनक नहीं पड़नी चाहिए।”

फिर बोले, “अच्छा, मुझे रसिक बाग्दी की बहू को देखने जाना है। कहीं रात में उसकी तबीयत बिगड़ न गयी हो। अच्छा मैं चलता हूँ।”

बूढ़े षष्ठीचरण को हंसता देखकर त्रिलोकी बोला, “चाचा, लोग इन्हे भले ही सनकी कहें, किन्तु गरीब-दुःखियों के प्रति इनके मन में जैसी दया-ममता है, वैसी तो बड़े-बड़े सेठों में देखने को नहीं मिलती। कितने सीधे और सरल प्रकृति के महाशय है यह? छल-कपट से तो

जैसे इनका परिचय ही नहीं।” कहते हुए त्रिलोकी ने प्रियनाथ को लक्ष्य करक् उनके सम्मान में माथा टेक दिया।

षष्ठीचरण बोला, “त्रिलोकी, अब हुकुम हो गया है, तो देर मत करो, जल्दी से काम शूरू कर दो।”

त्रिलोकी बोला, “ठीक कहते हो चाचा।”

प्रकरण 6

संध्या के अन्धकार के गहरा जाने पर भी अरुण ने अपने कमरे में रोशनी नहीं की थी। वह अपनी स्टडी टेबल पर पैर रखे छत की ओर देखे जा रहा था। मेज पर खुली पड़ी पुस्तक को देखकर लगता है कि अरुण इस पुस्तक को पढ़ रहा होगा। इसके साथ पढ़ने की इच्छा बनी रहने के कारण उसने पुस्तक को बन्द नहीं किया होगा। वास्तव में, संध्या के घर से लौटने के दिन से ही वह काम पर नहीं जा सका था। उसके दिमाग मे एक बी बात ने हलचल मचा रखी है कि अब वह लोगों के लिए अस्पृश्य हो गया है। उसके स्पर्श मात्र से लोगों को नहाना पड़ता है।

अचानक द्वार पर आहट पाकर वह अपने चिन्तन से बाहर निकला और उसने आवाज देकर पूछा, “कौन है?”

“मैं संध्या हूँ।” कहती हुई संध्या किवाड़ खोलकर कमरे में एक और खड़ी हो गयी।

मेज पर पैर उठाकर अरुण खड़ा हो गया और आश्चर्य प्रकट करता हुआ बोला, “संध्या तुम ऐसे समय यहाँ? आओ, भीतर आकर बैठ जाओ।”

संध्या बोली, “मेरे पास बैठने का समय नहीं है। मैं ताल पर मुंह-हाथ धोने के बहाने तुमसे एक निवेदन करने तुम्हारे पास चली आयी हूँ।”

“बोलो संध्या, क्या कहने आयी हो? क्या मैं तुम्हें किसी बात के लिए इनकार कर सकता हूँ?”

“मुझे इस बात का पता है और इसी भरोसे चली आयी हूँ।” कहकर कुछ देर के लिए संध्या चुर हो गयी, फिर बोली, “मुझे बाबू जी से मालूम हुआ कि तुमने उस दिन से काम पर जाना बन्द कर दिया है। घर से बाहर निकले तक नहीं। क्या इसका कारण क्या बता सकोगे?”

“मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था, तो काम पर कैसे जाता?”

“स्वास्थ्य खराब होने पर काम-धन्धे पर न जाना समझ में तो आता है, किन्तु तुम्हारे सम्बन्ध में यह सत्य नहीं है। यदि सचमुच तुम्हारी तबीयत खराब होती, तो तुमने बाबू जी से कहा होता?”

अरुण की चुप्पी पर संध्या भी कुछ देर के लिए चुप हो गयी और फिर बोली, “मुझे वास्तविकता की जानाकारी है। अरुण भैया, मेरा तुमसे अनुरोध है कि तुम हमारे घर आने की सोचना तक नहीं।”

अरुण धीमे-से बोला, “सिर्फ तुम्हारे घर की नहीं, पूरे गाँव की यह कहानी है, इसीलिए सोचता हूँ की इस गाँव को छोड़कर किसी ऐसे स्थान पर डेरा जमा दूं, जहाँ मनुष्य के साथ मनुष्य-जैसा व्यवहार किया जाता हो, किसी निर्दोष को अकारण अपमानित न किया जाता हो।”

संध्या ने पूछा, “क्या अपने जन्मस्थान से नाता तोड़ सकोगे?”

“जब जन्मभूमि ही नहीं अपनाना चाहती, तो क्या किया जा सता है? अब तुम ही देखो, मैं तुम्हारी दृष्टि में इतना पतित हो गया कि तुम्हे अपने मुंह में रखा पान तक थूकना पड़ा। इस प्रकार लोगों की धृणा का पात्र बन जान पर भी क्या जन्मभूमि कहकर किसी स्थान से चिपका रहा जा सकता है?”

संध्या उत्तर न दे पाने के कारण सिर झुकाकर चुप खड़ी रही। अरुण ने कहा, “आचार की पवित्रता के नाम पर यह संस्कार तुम लोगों को उत्तराधिकार में मिले हैं। एक दिन इन धर्मगुरुओं को यह सोचना पड़ेगा कि उनकी इस आचार-व्यवस्था से समाज के दीन-हीन लोगों के दिलों पर क्या बीताती है, उन्हें कितना अधिक परेशान होना पड़ता है?”

कुछ देर तक सोचती संध्या बोली, “समाज के इस व्यवहार के लिए क्या तुम स्वयं भी कुछ रम उत्तरदायी नहीं हो?”

“क्या मालूम, तुम्हारे कथन में कितनी सत्य है? अच्छा संध्या, इसका कोई प्रायश्चित तो होगा! क्या इस बारे में तुम मुझे कुछ बता सकती हौ?”

“प्रायश्चित तो है, किन्तु एक दिन तुम्हें यह सब करने में अपना अपमान लगा था और इससे तुम इसके लिए सहमत नहीं हुए थे। यदि आज तुम्हारा विचार बदल भी गया हो, तो भी तुम्हे इस गाँव मे रहने की सलाह दूंगी।”

अरुण बोला, “किन्तु कहीं भी चले जाने पर तुम्हारी घृणा को भुलाकर सुख-चैन से रह पाना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।”

संध्या बोली, “अपने प्रति मेरे दृष्टिकोण की तुम चिता ही क्यों करते हो?”

“संध्या, क्या यह तुम कह रही हो?”

संध्या बोली, “अरुण भैया, तुमने मुझे अपनी मर्यादा, लज्जा और संकोच आदि की रक्षा ही कहां करने दी है? मैंने कितनी बार संकेतों से तुम्हें जताना चाहा कि हमारा सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता। फिर भी, तुम मुझसे कुछ सकारात्मक सुनने की इच्छा से याचक बनकर डटे रहे। मेरे माता-पिता किसी प्रकार राजी हो भी जाएं, किन्तु मैं तो अपने उच्च बाह्मण वंश को मिट्टी में नहीं मिला सकती।”

आश्चर्यचकित अरुण बोला, “क्या मैं ब्राह्मण वंश में उत्पन्न नहीं हुआ हूँ?”

“निस्सेन्देह, तुम भी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, किन्तु बिल्ली और सिंह को एक ही पलड़े में तो नहीं रखा जा सकता।”

संध्या ने यह सब कह तो दिया, किन्तु वह अपने कथन के औचित्य पर विचार करने लगी।

अरुण चुप ही नहीं हो गया, अपितु उसने अपनी विस्मित और व्यथित दृष्टि भी संध्या के चेहरे से हटा ली।

संध्या ने बलपूर्वक हंसने की चेष्टा करते हुए कहा, "अरुण भैया, मैं भली प्रकार से जानती हूँ कि मैंने तुम्हारा इतना अधिक अपमान किया है कि वर्षो तक चाहकर भी तुम इसे भुला नहीं सकोगे। मैं तो यहाँ तक कह सकती हूँ कि इतना कठोर कभी किसी ने किसी के प्रति किया ही नही होगा।"

अरुण ने कहा, "छोड़ो इस विवाद को। पहले तुम अपने आने के प्रयोजन के बारे में बताओ?"

संध्या केवल मुस्करा दी और बोली, "संसार में एक से बढ़कर एक आश्चर्य होते देखे जाते हैं।" फिर थोड़ी देर चुप्पी के बाद सहमे स्वर में वह बोली, "अरुण भैया, मेरा सम्मान तुम्हारे हाथ में है। यदि तुमने मेरा कहा न माना, तो मैं कहीं की नहीं रहूंगी।"

अरुण बिना कुछ जाने क्या कहता? वह संध्या के चेहरे पर केवल प्रश्नवाचक दृष्टि से ताकता रहा।

संध्या बोली, "एक कोड़ी के बार ने अपनी विधवा बहू और पोती को अपने घर में निकाल बाहर किया है। मेरे बापू उन दोनों को ले आये थे और मैंने उन्हें अपने पिछवाड़े आश्रय दिया था।"

"कहां।"

"अपनी गौशाला में, किन्तु बाह्मणों का मुहल्ला होने के कारण उन शूद्रों के लिए वहाँ रहना सम्भव नहीं हो पा रहा है।"

"क्यों।"

"यह भी कोई पूछने की बात है? समाज के ठेकेदारों को शूद्रों का दिखना कहां रास आता है? पानी के लिए उन्हें हमारे तालाब पर आना पड़ेगा, फिर वे लोग रास्ते में बकरी को मांड

पिलाते है। गोलोक-जैसे ऊंचे ब्राह्मण छींटा पड़ने अथवा छू जाने की आशंका से त्रस्त हैं। उन लोगों के विरोध को देखकर माँ ने उन्हे अपने घर से निकाल देने का विचार बनाया हैष अरुण भैया, तुम उन निराश्रित एवं अभाव-पीडितों को सिर छिपाने के लिए अपना थोडा़-सा स्थान दे दो।"

अरुण बोला, "मंजूर है, किन्तु उन्हें कहां स्थान दिलाना चाहती हो?"

"यह मैं क्या बताऊं? मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि तुम्हारे सिवाय मेरा अपना कहलाने वाला दूसरा कोई नहीं।"

थोड़ा सोचकर अरुण बोला, "मेरा उड़िया माली अपने घर गया है। क्या उसकी कोठरी में इनका गुजर-बसर हो सकेगा?"

बिना कुछ उत्तर दिये संध्या ने सिर झुकाकर "क्यों नहीं" का संकेत दिया।

अरुण बोला, "तो ठीक, उन्हें भेज देना, कोठारी खोल दूंगा। माली के आने पर देख लिया जायेगा।"

संध्या चुप रहकर अनपे को संभालने का प्रयास करने लगी। फिर धीरे-से बोली, "इस समय मेरे मुंह में पान नहीं। हाथ-मुंह भी धोकर आयी हूँ। क्या तुम्हे प्रणाम करके तुम्हारी चरणरज ले सकती हूँ?"

कहती हुई संध्या घुटने टेककर अरुण को प्रणाम किया और उसके पैरों की धूलि को सिर पर रखा। इसके बाद बाहर निकली संध्या देखते-ही-देखते अदृश्य हो गयी।

अरुण ने संध्या को वापस बुलाने अथवा उससे कुछ पूछने की कोई चेष्टा नहीं की। उसे अदृश्य होने तक वह टकटकी लगाकर उसे देखता रहा।

प्रकरण 7

एक दिन तालाब से नहाकर घर लौटती जगदधात्री की रहा में अचानक रासमणि से भेंट हो गयी। रासमणि का चेहरा इस प्रकार उदास और बुझा हुआ था, मानो वह अभी-अभी कही से पिटकर आयी हो। समीप आकर आँसू बहाती हुई रासमणि रुंधे कण्ठ से बोली, “जगदधानी रानी, बड़ी भाग्यशाली हो और तुम्हारी लड़की भी लगता है कि पिछले जन्म मे बहुत पुण्य कर्म किये है।”

कुछ समझ पाती और लड़की के उल्लेख से परेशान हुई जगदधात्री बोली, “मौसी, कुछ साफ-साफ बता, तू कहना क्या चाहती है? तुम्हारी यह पहेली-जैसी बातें मेरी समझ से बाहर हैं।”

रासमणि बोली, “जो भाग्य तेरी लड़की लेकर आयी है, उस पर तो सबका ईर्ष्यालु होना स्वाभाविक है। अब तू इन्हीं भीगे कपड़ो और बालों से भगवान को प्रणाम करके कृतज्ञता का प्रदर्शन कर। गणेश, दुर्गा आदि कुलदेवियों का पूजन कर। हाँ, मेरा ईनाम देना न भूल जाना, मैं तो सने की गोट लूंगी, यह बात ध्यान में रख ले।”

हैरान-परेशान जगदधात्री बोली, “बे-सिर-पैर की हांके जाओगी या कुछ साफ-साफ बताओगी भी।”

हंसती हुई रासमणि बोली, “साफ सुनना चाहती है तो ले सुन। तुम माँ-बेटी के पिछले जन्म के पुण्यों का ही यह फल है। कहां तो लड़का मिलने की चिन्ता से दिन-रात घुल रही थी, कहां अब पूरे गाँव पर शासन करेगी।”

सुनकर जगदधात्री आँखें फाडकर रासमणि को देखने लगी। रासमणि अपनी रौ में कहती गयी, “मुझे भी पहले विश्वास नहीं हुआ था. सपना-जैसा लगता था, किन्तु बघाई हो, यह सत्य है।”

जगदधात्री ने कठोर स्वर में कहा, “मौसी, तुमहारी बकबक सुनते-सुनते मैं परेशान हो गयी हूँ। सीधे तोर पर साफ-साफ क्यों नहीं कहती?”

जगदधात्री के हाथ को अपने हाथ में लेकर धीरे-से उसके कान में रासमणि ने कहा, “जगदधात्री, इस बात को अभी अपने तक रखना, हवा न लगने देना। विघ्न-बाधा डालने वाले अपना रंग दिखाने पर उतारू हो जाते है। चटर्जी भैया को केवल मुझ पर भरोसा है, इसलिए आज सुबह उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि संध्या की माँ को सूचित कर दे कि उसे लड़की के बारे में चिन्ता करने कोई आवश्यकता नहीं। उसका हाथ थामने के लिए मैं तैयार हूँ। अब वह अपनी टांग-पर-टाग रखकर चैन की नींद सोये। मैंने सोच-विचारकर यह निर्णय लिया है। इससे एक तो ब्राहमण के वंश-धर्म की रक्षा हो जायेगी और दूसरे, गाँव की लड़की गाँव मे ही रह जायेगी।”

रासमणि की बात पूरी होने से पहले ही जगदधात्री पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी।

रासमणि ने पूछा, “क्या हुआ जगदधात्री?”

अपने को संभालकर जगदधात्री बोली, “मौसी, लगता है कि तूने धूप में बाल सफेद किया हैं, नहीं तो गोलोक मामे के मजाक को इतनी गम्भीरता से न लेती। क्या चार जनों द्वारा उठाया जाने वाला बूढ़ा दूल्हा बनेगा?”

रासमणि बिना झेपे अपनी कहती रही, “बेटी, मर्द की भी कभी आयु देखी जाती है? स्वास्थ्य अच्छा हो तो सत्तर की आयु का मर्द सत्रह वर्ष की छोकरी से विवाह रचाता है। बेटी, मुझे भी पहले यह मजाक लगता था, किन्तु गोलोक न् कभी हलकी बात करता है और न ही झूठ बोलता है। उन्होंने पूरी गंभीरता से यह सब कहा है। मैं तो आशीर्वाद देती हूँ की यह सम्बन्ध स्थिर हो जाये। इसे अपना सौभाग्य समझो बेटी। जाओ, घर आनन्द मनाओ।”

जड़ बनी जगदधात्री चुपचाप खड़ी रही। उसके पैरों के नीचे से मानो धरती खिसक गयी थी।

रासमणि ने जगदधात्री के चेहरे को देखे बिना कहना चारी रखा। वह बोली, “इसी अगहन के महीने में विवाह हो जाना चाहिए, इसके बाद अच्छा लगन नहीं निकलता है। गोलोक भैया की इच्छा है... लड़की बी तो अप्सराओं से बढ़-चढ़कर है, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों का मन भी डुला सकती है, फिर मुखजी भैया तो एक साधारण मनुष्य ही हैं।”

इसके बाद वह फिर बोली, "बेटी, तू गीले कपड़ों मे काफी देर से खड़ी है। जा, घर जाकर कपड़े बदल, मैं तुम्हारे घर आकर सारी बातें करूगी।"

यह कहकर रासमणि अपने घर को चल दी और जगदधात्री लड़खड़ाते पैरों से अपने घर आ गयी। घर पहुंचकर ठाकुरद्वार के बाहर बैठी वह टप-टप आँसू बहाने लगी।

इकलौती लड़की संध्या जहाँ अपने माँ-बाप की लाडली है, वहाँ रूप-सौन्दर्य और गुण-बुद्धि में भी अप्रतिम है। गोलोक को अपनी लड़की सौंपने की अपेक्षा उसे कुएं धकेल देना अधिक बेहतर समझती है। गोलोक लड़की के नाना की आयु का है। ऐसे बूढ़े से लड़की की ब्याहने से अच्छा तो उसकी हत्या कर देना है। जगदधात्री इस सत्य को भली प्रकार समझती है, किन्तु मुंह से "न" निकालते ही नहीं बनता, क्योंकि कुलीन ब्राह्मण परिवारों में तो यह सब चलता ही है। उसके सामने इस प्रकार के अनेक उदाहरण है, इसलिए वह अत्यधिक व्यथित, चिन्तित और परेशान है। लगातार रो रही है। उसे डर है कि कहीं ऐसी स्थिति न आ जाये कि इस नरपिशाच से पीछा छुड़ाना ही कठिन हो जाये?

एक पत्र को पढ़ती हुई भीतर प्रविष्टहोती संध्या ने आवाज दी, "माँ, कहां हो तुम?"

तुरन्त ही आँसू पोंछकर सामान्य बनने की चेष्टा करती हुई जगदधात्री बोली, "हाँ, कहो बिटिया! क्या बात है।"

"माँ के रुंध गले से चौंकी संध्या ने सपीम आकर धीरे-से सहानुभूति दिखाते हुए पूछा, "मां, क्या हुआ है?"

लड़की के चेहरे से अपना चेहरा हटाती हुई माँ बोली, "कुछ भी तो नहीं?"

माँ के और अधिक समीप आकर अपने आँचल से उसके आँसू पोंछती हुई संध्या ने पूछा, "क्या बाबू जी ने कुछ उल्टा-सीधा कह दिया है?"

जगदधात्री ने कहा, "नहीं तो।"

माँ के कथन पर विश्वास न करती संध्या माँ के समीप बैठ गयी और दार्शनिक शैली में बोली, “माँ, सबको सदैव मनचाहा नहीं मिलता। इसमें दुःख मनाने वाली कोई बात नहीं। एक बात और, जब सब लोग बाबू जू को सनकी कहते हैं, तो तुम भी उन्हें ऐसा समझदार उनके सुने को अनसुना क्यों नहीं कर देती हो?”

जगदधात्री बोली, “लोगों का क्या आता-जाता है? वे जिसे जो समझना-कहना चाहें स्वतंत्र हैं, किन्तु मैं ऐसा समझ भी लूं, तो क्या मुझे उनकी जली-कटी सूनने से मुक्ति मिल जायेगी?”

संध्या आज तक यह नहीं समझ पायी थी कि किसकी जली-कटी को सुनकर सुनने बाले के मन पर क्या बीतती है, उसे कैसी गहरी वेदना झेलनी पड़ती है? आज भी उसकी स्थिति वही थी। अतः संध्या आज भी माँ की बात सुनकर अपने निरीह, सरल, परोपकारी और लोकसेवा के प्रति समर्पित पिता का बचाव करती हुई बोली, “माँ, यदि मेरे वश में होता, तो मैं पिता जी को लेकर ऐसे किसी वन-प्रान्त अथवा पर्वत-प्रदेश में चली जाती, जहाँ पिताजी का ऐसे लोगों से पाला ही न पड़ता।”

लड़की की ठोड़ी को चूमकर जगदधात्री हंसती हुई बोली, “पिता के लिए तेरी यह चिन्ता और भावना सचमुच प्रशंसनीय है, किन्तु मेरे लिए तो उससे आधा स्नेह भी नहीं, मानो मैं तुम्हारी सौतेली माँ हूं।”

“अच्छा तो माँ, क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करती?”

“किन्तु पिता के लिए तो तू अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहती है, मेरे ऐसा भाग्य कहां? अब इसी एक बात को देख ले, तुझे भली प्रकार से मालूम है कि तुम्हारे बाबू की दवाई से किसी रोग की कोई लाभ नहीं होता, फिर भी, बाबू की दवा के सिवाय औक किसी की दवा को लेने को तैयार नहीं। यहाँ तक कि अपने स्वास्थ्य के उत्तरोत्तर बिगड़ते जाने की भी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है।”

प्यार से माँ के गले में अपने दोनों हाथ डालकर हंसती हुई संध्या बोली, “माँ, यह तो सत्य है। मैं किसी भी दूसरे डॉक्टर को बाबू के समकक्ष मान ही नहीं सकती।”

“मानती हो न कि तुम अपने पिता में असीम भक्ति रखती हो?”

संध्या बोली, “माँ रहने दो, पिताजी के उपचार से मुझे काफी लाभ हुआ है, अब में पहले से काफी ठीक हूँ।” इसके बाद विषय बदलने की गरज से संध्या बोली, “माँ, दूले की बहू चली गयी। यह अच्छा ही हुआ कि इस आफत से छुटकारा मिला। क्यों. ठीक है न मां।”

आश्चर्य प्रकट करती हुई माँ ने पूछा. “कबी गयी?”

“ठीक से मालूम नहीं, शायद सवेरा होते ही चली गयी है।”

संध्या के भोलेपन का अभिनय माँ को छल न सका। उसने पूछा. “तुझे तो यह मालूम ही होगा कि वह कहां गयी है।”

संध्या ने उदासीनता और बेपरवाही से कहा, “शायद अरुण भैया ने उसे अपनी कोठी के पीछे बाग में जगह दे दी है। वहाँ उड़िया माली की एक कोठरी खाली पड़ी थी, वही उसे दे दी गयी है।”

माँ ने पूछा. “अरुण के पास तूने उसे भेजा होगा?”

संध्या मन-ही-मन इस उलझन से मुक्त होने का उपाय सोचने लगी। असत्य का आश्रय लेती हुई वह बोली, “अरुण भैया के पास मैं किसी को क्यों भेजने लगी? इस बारे में मुझे कुछ भी मालूम नहीं।”

इसके बाद इस विषय की चर्चा से माँ का ध्यान हटाने की नीयत से संध्या ने अपने हाथ में थामा पत्र माँ के सामने रख दिया और बोली, “असल बात जो तुम्हें बतानी थी, वह तो बतायी नहीं। मेर संन्यासिनी दादी की यह पत्र आया है। वह कभी झूठ नहीं बोलती। इससे लगता कि वह यहाँ साथ रहने के लिए आ रही है।”

जगदधात्री ने पूछा, “सासू माँ का पत्र है क्या? कब आ रही हैं वही?”

यही सासू माँ काशी छोड़कर एक दिन के लिए इधर आने को कभी सहमत नहीं हुई थीं। जगदधात्री ने इकलौती बेटी संध्या के विवाह में सम्मिलित होने के लिए बहुत अनुनय विनय की थी। सास कन्यादान का पुण्य लेने को तो सहमत नहीं हुई थी, किन्तु उसने विवाह में सम्मिलित होने का अनुरोध मान लिया था।

अपने विवाह के उल्लेख से शर्माती हुई संध्या बोली, "माँ, अपने पत्र के उत्तर को स्वयं पढ़ लो न?"

इसी के साथ पत्र माँ के हाथ में देकर संध्या बोली, "माँ, अभी तक तुमने गीली धोती ही पहन रखी है। मैं अभी तुम्हारे सुखे वस्त्र लायी।" कहती हुई संध्या तेजी से चली गयी।

पत्र को माथे ले लगाकर जगदधात्री अपने से बोली, "माँ बहुत दिनों के बाद तुम्हारा चित द्रवित हुआ है।"

करती हुई धीरे-से ठाकुरद्वारे की ओर चल दी। इसी बीच प्रियनाथ ऊंचे स्वर में चिल्लाते हुए घर में प्रविष्ट हुए। वह बोले जा रहे थे, "दो दिन देखने नहीं जा पाया तो "हाईकोपाड्रिया" ने जोर पकड़ लिया।"

जगदधात्री की अपने पति से प्रायः बातचीत होती ही नहीं थी, किन्तु आज अचानक बारह बजे उनके घर आ जाने और बड़बड़ाने पर उसने पूछ ही लिया, "किसे क्या हो गया है?"

प्रियनाथ बोले, "अरुण को हाइकोपाड्रिया हो गया है। मेरी जाचं-परख में मीन-मेख निकालना किसी के बाप के भी बस में नहीं है। विपिन तो इस रागवाचक शब्द के अर्थ तक को नहीं जानता होगा।"

अरुण का नाम इस चर्चा से न जुड़ा होता, तो जगदधात्री इस बातचीत में रुचि न दिखाती, किन्तु अब स्थिति भिन्न थी। उसने उत्सुक होकर पूछा, "क्या हुआ अरुण को?"

प्रियनाथ के कहा, "अभी तो सब बताया है, किन्तु इस शब्द के अर्थ को जब ठीक से अरुण ही नहीं समझ सका, तो तुम लोग क्या समझोगे? विपिन थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस तो करता है, फिर भी, इस रोग के बारे में वह कुछ नही जानता। सब लोग अपना माल-असबाबा बांध रहे

थे, जमीन-जायदाद बेचकर इस स्थान को छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाने की तैयारी चल रही थी। हारान कुण्डू को सूचना दे दी गयी थी कि संयोगवश मैं वहाँ पहुंच गया। अब क्या करूं, जहाँ एक दिन जाना नहीं हों पाता, वही कि स्थिति बिगड़ जाती है। मैं अकेला आदमी ठहरा, जाऊं भी, तो कहां-कहां जाऊं? अरी संध्या बेटी, जरा, “मेडिका-मेटेरिया” पुस्तक तो ला दे, ताकि अरुण के लिए दवाई का चुनाव कर लूं?”

पिता की आवाज को सुनकर एक मोट-सी पुस्तक को हाथ में लिए संध्या बोली, “आयी पिताजी।”

जगदधात्री व्याकुल होकर अपने पति से बोली, “ठीक से बताओ, अरुण को क्या हुआ है?”

चौंककर प्रियबाबू बोले, “बताया तो है, वह मनोरोग से ग्रस्त हो गया है। अपना सारा सामान हारन कुण्डू को कौड़ियों के दाम बेचकर आज ही यहाँ से कूच करना चाहता है? यह सब मेरे होते कैसे सम्भव है? दो सौ पावर की एक बूद...।”

सुनकर संध्या का चेहरा बुझ गया। जगदधात्री व्याकुल कण्ठ से बोली, “सारी सम्पत्ति बेचकर गाँव को छोडने की बात करना तो पागलपन का लक्षण है।”

हाथ के संकेत से प्रियनाथ ने कहा, “इसे पूरे तौर पर पूरा पागलपन नहीं कहा जा सकता। पागलपन को इन्सेनिटी कहते हैं और उसकी ओषधि अलग है। हाँ, विपिन के लिए इस अन्तर को समझाना अवश्य सहज नहीं।”

लड़की की ओर देखने के बाद पति को घूरती हुई जगदधात्री दृढ़ स्वर में बोली, “मुझे तुम्हारी बेकार की बातों को सुने में कोई रुचि नहीं। सीधे-सीधे यह बताओ कि क्या अरुण ने गाँव छोड़ने का मन बना लिया है?”

“ऐसा था और इस दिशा में तैयारी चल रही थी, किन्तु...।”

“क्या हारान कुण्डू से सारी सम्पति ख़रीदने की बातचीत कर ली गयी है?”

“हाँ, उस पाजी के तो पौ बारह हो रहे है, किन्तु मैं...।”

“अच्छा, क्या इस तथ्य की जानकारी गाँव के अन्य लोगों को भी है?”

“मेरे सिवाय किसी भी अन्य व्यक्ति को कुछ मालूम नहीं।”

“क्या तुम मेरा एक काम करने की कृपा करोगे? अरुण को केवल यह कहना है कि तुझे चाची ने इसी समय घर पर बुलाया है।”

संध्या चुपचाप खड़ी सब सुन रही थी, उसने एक भी शब्द मुंह से नहीं बोला था। जगदधात्री की दृष्टि उस पर गयी, तो वह यह देखकर चकित हो गयी कि लड़की का चेहरा उतर गया है। उसके होंठ कांप रहे हैं और उसका अंग-अंग शिथिल हो गया है, फिर भी, वह संभलकर दृढ़ स्वर में बोली “माँ, उन्हें यहा बुलाकर क्या एक बार फिर अपमानित करना चाहती हो? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जिसका दण्ड तुम उन्हें देना चाहती हो?”

चकित हुई माँ ने पूछा, “संध्या, यहाँ अपमान किये जाने की बात कहां से आ गयी?”

संध्या बोली, “माँ, मैं नहीं चाहती कि तुम उन्हें अपने इस घर में बुलाओ।”

जगदधात्री ने कहा, “क्या घर में बुलाकर सुख-दुःख बांटना भी कोई अपराध है?”

संध्या बोली, “माँ, उनके सुख-दुःख से हमें क्या लेना-देना? वह चाहे इस गाँव में रहे या यहाँ से चले जायें, हमें इससे क्या अंतर पड़ता है। तुम उनके बारे में इतनी परेशान क्यों हो रही हो? फिर पिता की और उन्मुख होकर वह बोली, “पिताजी, आपको उन्हें बुलाने के लिए जाने की कोई आवश्यकता नहीं।” इसके बाद वह माँ से दृढ़ शब्दों में बोली, “यदि तुमने हठ नहीं छोड़ा, तो मैं उनके आने से पहले ही तालाब में डूब मरूंगी।”

यह कहती हुई संध्या माँ के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वहाँ से दूर चली गयी।

चिन्तित-विस्मत होने से जड़ बनी जगदधात्री वहीं खड़ी रही। प्रियनाथ उच्च स्वर में बोले, “बेटी, पुस्तक दे जाती, तो औषधि ढूंढ़ लेता।”

संध्या न लौटकर पुस्तक ला दी और प्रियनाथ पुस्तक में से दवा ढूंढ़ने में व्यस्त हो गये।

कुछ देर की चुप्पी के बाद जगदधात्री अपने पति से बोली, “क्या तुमने लड़की को कुंआरी रखने की ठान ली है?”

“ऐसी बात क्यों कहती हो? उसका विवाह होगा और अवश्य होगा।”

“आखिर कब होगा? जब बूढ़ी हो जायेगी, तब?”

प्रियनाथ “हूँ” करके रह गये।

“एक दिन रसिकपुर क्यो नहीं चले जाते?”

विशिष्ट दवा पर अंगुली रखकर प्रियनाथ ने पूछा, “क्या वहाँ किसी को कोई कष्ट है? क्या किसी ने सन्देश देकर बुलाया है।”

ठण्डी सांस छोड़कर बोली, “जयराम मुखर्जी के नाती के साथ बात चल रही थी न। जाकर एक बार लड़के को देख तो आओ।”

प्रियनाथ बोले, “जाना चाहूं तो, तो कब जाऊं? एक समय भी यहाँ मेरे न रहेने पर लोग किनते अधिक परेशान हो जाते है? अरुण का हाल तो तुम्हें मालूम है, चटर्जी का आदमी भी उसकी साली की जाचं के लिए बुला गया है।”

जगदधात्री ने आश्चर्य से पूछा, “ज्ञानदा को क्या हो गया है?”

प्रियनाथ बोले, “खान-पान की बदपरहेजी से अपच हो गया लगता है, इससे उसका जी मचलाता है। अरुण के पास से लौटता हुआ ज्ञानदा को देखता आऊंगा।”

जगदधात्री बोली, “चटर्जी के यहाँ डॉक्टरों की कोई कमी नहीं है। तुम अपने कर्तव्य-कर्म को महत्व दो। रसिकपुर जाकर एक बार लड़के को देख आओ, फिर जो मन में आये, वह करते रहो।”

पत्नी की विह्वलता से द्रवित प्रियनाथ थोड़ा होश मे आये और धीमे-से बोले, “देखना क्या है, सुना है लड़का एकदम आवारा है।”

जगदधात्री आँसू टपकाते हुए बोली, “नशा करता है, तो क्या आवारागर्दी करता है, तो क्या उससे विवाह करते लड़की सुहागिन तो बन जायेगी। जब मेरे माँ-बाप ने तुम-जैसे आदमी के हाथ सौंपने में क्या आपति है? कहती हुई वह अपने आँचल से आँसू पोंछकर बाहर को चल दी।”

प्रियनाथ कुछ देर तक जड़ बने बैठे रहे, फिर सांस छोड़कर अपने से बोले, दो-दो रोगियों की चिकित्सा करनी है। इस तनाव की स्थिति में कही औषधि का चुनाव करना सम्भव है? कहकर उन्होंने पुस्तक को बगल में दवाया और बाहर की राह ली।

प्रकरण 8

पूजा पाठ तथा सात्विक जलपान से निवृत्त होकर नीचे उत्तर आये धर्मावतार गोलोक चटर्जी किसी कार्यवश बाहर निकल ही रहे थे कि कुछ याद आ जाने के कारण लौट आये और एक बरामदे से दूसरे बरामदे में घूमने लगे। अचानक रुककर ज्ञानदा को मीठी डांट लगाते हुए चिन्तित स्वर में बोले, “छोटी मालकिन, तुम्हें कितनी बार समझाऊंगा कि स्वास्थ्य की चिन्ता सबसे पहले। ऐसा भला कौन-सा काम है, जिसे निपटना जरूरी हो गया है?”

हंसिया से तरकारी काटती पूर्ववत् अपने काम में जूटी रही, मानो उसने चटर्जी के खडांऊ की खट-खट को और कण्ठ से निकली बक-बक को सुना ही न हो।

कुछ देर की चुप्पी के बाद गोलोक के पूछा, “भगवान का धन्यावाद! यह प्रियनाथ की औषधि का प्रभाव है। वैसे तो यह आदमी सनकी है, किन्तु वैद्यक में साक्षात् धन्वन्तरि है। उसकी दी गयी दवा को उसके निर्देशों के अनुसार लेती रहना। लापरवाही करने से भयंकर परिणाम भुगतना पड़ सकता है।”

ज्ञानदा बिना किसी बात का उत्तर दिये अपना काम करती रही।

थोड़ी देर तक ज्ञानका के चेहरे पर ताकने के बाद गोलोक ने कहा, “प्रियनाथ को सुबह-शाम तुम्हारी देखभाल करने को कह दिया है। क्या वह सुबह आया था?”

नीचे सिर झुकाकर बैठी ज्ञानदा ने गरदन हिलाकर उत्तर दिया, “हाँ।”

प्रसन्न होकर गोलोक बोले, “कैसे नहीं आयेगा, मेरे आदेश का पालन न हो, ऐसा कैसे हो सकता है? रांड दाई कहां गयी है? प्रियनाथ की दवा खाने पर, यदि तुम महेनत में अपने को खपाती रहीं, तो लाभ कैसे होगा? क्या सारे नौकर-चाकर मर गये है, जो तुम्हें काम करना पड़ रहा है? मैं यह नहीं होने दूंगा। उठो, ऊपर जाकर आराम करो। मधुसूदन, तुम्हारा ही भरोसा है।”

ज्ञानदा को इस निर्देश देने के रूप में अपने लौकिक और धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न समझकर निश्चिंत हुए गोलोक बाहर जाने को उद्यत हुए।

गोलोक के खड़ाऊं की आवाज से उन्हें जाता निश्चित समझकर अब तक झुका रखे, मुरझाये और दुःख से स्याह पड़े अपने सिर को ऊंचा करके रोने से सूजी और लाल हो गयी आँको से आँसू टपकती हुई ज्ञानदा गोलोक के चेहरे पर अपनी दृष्टि टिकाकर रुंधे गले से बोली, “क्यों जी, क्या तुमने प्रियनाथ की लड़की से ब्याह करने का निश्चय कर लिया है? देखो, इस विषय में मुझे अन्धकार में रखना ठीक नहीं। सब कुछ सच-सच बता दो।”

घबराहट के कारण गोलोक सहसा मुंह न खोल सके, किन्तु प्रयन्तपूर्वक अपने को संभालकर बोले, “क्या संध्या की बात कर रही हो? मेरे साथ तो उन लोगों ने कोई बात नहीं की। तुम्हें किसने कहा है?”

“किसी ने कहा हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। क्या तुमने रासमणि को लड़की वालों के पास अपना प्रस्ताव पहुंचाने के लिए नहीं भेजा? यहाँ तक कि विवाह का मुहूर्त अगला अगहन भी निश्चित कर लिया। आपको अपने इष्टदेव की सौगन्ध है, मिथ्या-भाषण न करना।”

“अच्छा, तो यह सारी शैतानी उस ब्राह्मणी की है; मैं अभी उसकी खबर लेता हूँ।”

ज्ञानदा बोली, “बात बदलो नहीं, यदि यह सत्य है, तो आपने मेरा सर्वनाश क्यों किया?” कहती हुई दुखिया के आँसू छलक आये।

गोलोक किसी के द्वारा सुने जाने की आशंका से भयभीत हो उठे और दूबे स्वर में वोले, “यह तुम क्या कर रही हो? कोई सुन लेगा, तो फिर दोनों कहीं के नहीं रहेंगे। रासमणि तुमसे मजाक कर रही होगी। इसमें कुछ भी सच्चाई नहीं है।”

बिलखती हुई ज्ञानदा बोली, “सत्य को कब तक छिपाओगे? रासमणि मौसी मेरे साथ मजाक कभी नहीं कर सकती। यह शत-प्रतिशत सत्य है। आप तो कुछ भी कर सकते है; क्योंकि आपकी दृष्टि में जो आप करेंगे, वहाँ धर्म और न्याय होगा।”

“जह मैं कहता हूँ गलत है, तो तुम मानती क्यों नहीं हो? अरे हंसी-मजाक में मेरे मुंह से निकल गया होगा, वरना संध्या तो मेरी नातिन है। अब चुप हो जाओ, किसी नौकर-चाकर के कान में कुछ पड़ गया, तो अनर्थ हो जायेगा। यह कहकर गोलोक झट से वहाँ से चलकर गायब हो गया।”

इस बीच नौकरानी ने एक अन्य नौकरानी के साथ ज्ञानदा के ससुर जी के घर पर आ पहुंचने की सूचना ज्ञानदा को दी, जिसे सुनकर ज्ञानदा का खून पानी बन गया। उसे चुपचाप और सुने को अनसुना करके बैठा देखकर नौकरानी फिर बोली, “मौसी जी, वहाँ की किसी नौकरानी को साथ लेकर तुम्हारे ससुर जी इधर आये हैं।”

आँसू पोंछकर उत्सुक दृष्टि से नौकरानी की ओर देखती ज्ञानदा इस प्रकार कांपने लगी, मानो उसने किसी भूत को सामने देख लिया हो।”

ज्ञानदा के पीले पड़े औक उदासी से बुझे चेहरे को देखकर दासी ने पूछा, “मौसी जी, क्या आपकी तबीयत खराब है?”

ज्ञानदा से उत्तर न पाकर नौकरानी ने अपने प्रश्न को फिर से दोहराया।

ज्ञानदा ने “हाँ” कहने के बाद दासी से पूछा, “बाबू जी कब आये हैं?”

दाली बोली, “उनेक आने की सही समय का मुझे पता नहीं। मैंने तो उन्हें अभी देखा है, वह आंगन में खड़े होकर बाबू साहब से बातचीत कर रहे थे।”

ज्ञानदा ने पूछा, "क्या गोलोक बाबू के साथ?"

"हाँ-हाँ, उन्हीं के साथ। मुझे उन्होंने ही उनके इधर आने की सूचना देने के लिए भेजा है। अरे...वह तो स्वयं तुम्हारे पास चले आ रहे हैं।"

यह कहकर नौकराना वहाँ से चलती बनी। इतने में लाठी की समीप आती आवाज से स्पष्ट हो गया कि आने वाले सज्जन लाठी की सहायता के बिना नहीं चल पाता, इसके अतिरिक्त शायद वह आँखों का काम भी लाठी से लेते हैं।

इसी बीच एक अधेड़ आयु की महिला के पीछे लाठी के सहारे धीरे-धीरे से चलता एक वृद्ध पुरुष ज्ञानदा के सामने आ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "मेरी बेटी कहां है?"

ज्ञानदा ने उठकर वद्ध ससुर के चरण-स्पर्श किये और उनके चरणों की रज को अपने सिर पर रखा। अपने सामने खड़ी बहू का चेहरा न देख पाने पर भी वृद्ध ने अपनी बहू को पहचान लिया। आशीर्वाद देने के बाद बिलखते हुए वह बोले, "बुढ़िया सास और ससुर को भुलाकर तुम यहाँ कैसे पड़ी हो बेटी?"

वृद्ध के साथ आयी दासी ने ज्ञानदा को प्रणाम करने के बाद कहा, "बाबू जी ठीक ही तो कह रहे हैं। बूढ़ी दिन-रात एक ही रट लगाये रहती है, मेरी बेटी को जल्दी से घर ले आओ। मेरे लिए अपनी बहू को भुलाना कैसे सम्भव है?"

ज्ञानदा ने मुंह नहीं खोला। उसने अपने आँसू पोंछे, फिर बूढ़ ससुर का हाथ पकड़कर उन्हें घर के भीतर ले गयी। उसने अपने हाथ से आसन बिछाकर बूढ़े को बिठाया और फिर चुपचाप उनके सामने खड़ी हो गयी।

वृद्ध बैठकर बोला, "आने से पहले मैंने चटर्जी महाशय को दो पत्र भेजे, किन्तु एक का भी उत्तर न मिलने पर सोचा, बड़े लोग छोटे लोगों के पत्र का उत्तर देने की परवाह कहां करते है, किन्तु बेटी, तू तो हमारे उस घर की लक्ष्मी है। अतः पत्र न मिलने पर भी तुम्हें लेतने के लिए तो मुझे आना ही था।"

साथ आयी दासी बोली, “जीजा जी के बहुत बड़े आदमी होने में तो कोई सन्देह नहीं, किन्तु फिर भी, घर की बहू को पराये घर में इतने दिनों तक तो नहीं रखा जा सकता विशेषतः जब बहिन ही नहीं, तो फिर...।”

बुद्धि बीच में ही बोल उठे, “सद्दो, इन बातो को कहने का कोई लाभ नही।” फिर ज्ञानदा की और उन्मुख होकर वह बोले, “बहू, तुम्हारी सास काफी बीमार है, उसने आज अच्छा मुहूर्त निकलवाकर तुम्हे लिवा लाने को मुझे भेजा है।”

सुद्दो दासी बोली, “सच पूछो, तो तुम्हें देखने के लिए बुढ़िया के प्राण अटके है। कई दिनों से वह मुझे तुम्हारे पास आने को कहे जा रही थी। उसकी साध है कि मरने से पहले एक बार बहू का चेहरा देख ले। बस, इसीलिए वह अभी तक जीवित है।”

कहते हुए सद्दो का गला रुंध गया और आँखे गीली हो गयीं। वृद्ध बोले, “चटर्जी महाशय कहते हैं कि उन्हें हमारे दोनों पत्र नहीं मिले। हम तो यही सोचते रहे कि बड़े आदमी होने पर भी साधु पुरुष है, इसीलिए उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे। हमें आशा थी कि चटर्जी महाशय लिखेंगे कि आपकी बहू है, आप ले जाइये, मुझे इसमें भला क्या आपत्ति हो सकती है? पत्र का उत्तर तो नहीं मिला, किन्तु आते ही वह बहू को भेजने के लिए तत्काल तैयार हो गये। इतना ही नहीं, पालकी लाने को आदमी भी भेज दिये। यही तो साधु पुरुष के लक्षण हैं। वह हमारे प्रति आभार जताते हुए बोले-आपने हमारे संकट में बहू को भेजकर हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है। आपको अब उसकी आवश्यकता है, तो मैं उसे क्यों रोककर रखूंगा? आज ही आपके साथ उसे रवाॉना किये देता हूँ।”

अब तक अवसादग्रस्त बनी ज्ञानदा बोली, “क्या चटर्जी जीजा ने अपने मुंह से आज ही मुझे रवाना करने की बात कही है?”

सौदामिनी प्रसन्नता से उछलती हुई बोली, “साधु पुरुष जो ठहरे। उन्होंने यहाँ तक कहा की खा-पीकर जल्दी से चल दीजिए, ताकि तीन बजे की गाड़ी पकड़ सके और फिर कल सवेरे आराम से अपने घर पहुँच सके। जब घर में बुढ़िया बीमार पडी हो, तो मैं आपको पल-भर

के लिए भी रुकने को नहीं कह सकता।" फिर वह ज्ञानदा की ओर उन्मुख होकर बोली, "बुढ़िया तो दिन-रात तुम्हारे नाम की माला जपे जा रही है।"

चकित और व्यथित हुई ज्ञानदा ने पुनः पूछा, "क्या जीजा जी ने यथाशीध्र मुझे भेजने की अपनी सहमति प्रकट की है?"

वृद्ध बोला, "हाँ, बेटी, बेटी हाँ, नहीं तो क्या हम झूठ बोल रहे है? फिर यह भी तो सोचो, वह तुम्हे किसलिए रोके रख सकते है?"

ज्ञानदा की इस पूछताछ से दासी सौदामिनी काफी नाराज हो गयी थी। उसके व्यवहार से उसकी नाराजगी साफ भी हो गयी। वह बोली, "सासा मर रही है, बूढ़े ससुर स्वयं इतनी दूर से लेते आये हैं और बहूजी बार-बार सवाल-पर-सवाल किये जा रही हैं, यह भी कैसा तमाशा है? अच्छा, यह बताओ, कि अब तुम्हें कोई क्यों रुकने के लिए कहेगा? यदि तुम्हे विश्वास नहीं आता, तो स्वयं अपने जीजा स पूछ लो।"

पास खड़े गोलोक ने यह सुना, तो खड़ाऊं की आवाज करते हुए उधर चले आये और वृद्धको सम्बोधित करते हुए बोले, "मुखर्जी साहब क्षमा करे, अब बैठकर बातचीत करने का समय नहीं है। नहाने-धोने औक खाने-पीने के लिए बी समय चाहिए। फिर शुभ मुहूर्त भी निकला जा रहा था। मुखर्जी साहब, हमें कुछ कष्ट अवश्य होगा, किन्तु आपकी बहु को हम रोककर नहीं रख सकते। आपकी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से कहीं अधिक और बढ़-चढ़कर है। यदि मै झंझटों में न फंसा होता, तो ज्ञानदा को स्वयं आपके पास छोड़ आता। आप लोगों का एक भी पत्र नहीं मिला, अन्यथा यह हो ही नहीं सकता की मैं उत्तर न दूं। आपको इधर आने का कष्ट ही क्यों करना पड़ता? डाकिये साले बदमाश हो गये हैं, पत्रो को इधर-उधर कर देते हैं। काली, कहां मर गया है, हुक्का तैयार करके इधर क्यों नहीं लाया? हाँ, मुखर्जी साहब, उठिये, अब सोच-विचार में समय गंवाना उचित नहीं है। ज्ञानदा, जल्दी करो, नहीं तो तीन बजे वाली गाड़ी नहं पकड़ सकोगं। चौंगदार बाहर बैठा है, सच तो यह है कि जब से घरवाली नहीं रही, तब स कुछ याद ही नहीं रहता। मधुसूदन, तुम्हीं लाज रखना, तुम्हारा ही भरोसा है।"

गोलोक यह कहकर सारे मकान को खड़ाऊं की आवाज से गुंजाते हुए दूसरे कमरे में चल गेय। ज्ञानदा बिना कुछ बोले जड़-पत्थर बनी जीजा को जाते देखती रही।

भोलू ने आकर कहा, "मौसी जी, लल्लू नहाने की हठ कर रहा है, क्या उसे नदी पर ले जाऊं?"

ज्ञानदा को कुछ सुनाई नहीं दिया और इसीलिए वह उत्तर में कुछ नहीं बोली।

वृद्ध ने उठते हुए कहा, "बेटी, तुम जल्दी से तैयार हो जाओ, मे बाहर तुम्हीरी प्रतीक्षा में बैठा हूँ।"

सद्दो दासी बोली, "बहू जी, आज मेरी षष्ठी तिथि है, इसलिए मैं भात नहीं खाऊंगी।"

ज्ञानदा उठकर खड़ी हो गयी और द्दढ़ स्वर में बोली, "मुझे आपके साथ नहीं जाना है।"

वृद्ध ससुर चकित होकर बोले, "जाने के लिए आज कि दिन शुभ है, फिर क्यों नहीं जाना है?"

दासी अपने लिए फलाहार कहने की बात भूल गयी और बोली, "भट्टाचार्य जी से मुहूर्त निकलवाकर ही घर से चले है बहूरानी!"

ज्ञानदा ने द्दढ़तापूर्वक कहा, "बाबू जी, मैं नहीं चलूंगी।"

गोलोक का दस-बाहर वर्ष का लड़का दौडकर आया और ज्ञानदा से लिपट गया। वह बोला, "मौसी, मुझे नदी पर नहाने के लिए जाने की अनुमति दे दो ना।" ज्ञानदा ने बिना कुछ बोली उसे लड़के को अपनी छाती से चिपका लिया और फिर बिलख-बिलखकर रोने लगी।

प्रकरण 9

ज्ञानदा ने कमरे में आकर एक बार भीतर से दरवाजा बन्द किया, तो फिर खोली ही नहीं। दासी और बूढ़ा ससुर विमूढ़ बनकर दोपहर तक बैठे रहे। वे अपनी बहू की इस आनाकानी का कारण समझ ही नहीं पाये। फिर भी, उन्हे इस तरह खाली लौट जाना अच्छा नहीं लगा।

उन्होंने दरवाजे के बाहर से काफी गन्दी और अशोभनीय बातें भी कही, झूठ आरोप भी लगाये। ज्ञानदा ने सब कुछ सुना, किन्तु किसी भी बात का उत्तर न दिया। इतना ही नहीं, ज्ञानदा ने अपने रोने की आवाज भी बाहर नहीं आने दी। बूढ़ा चकित था कि उसकी बहू कैसी औरत है? जिस सास ने इस औरत के विधवा होने पर भी इसे आज तक अपनी छाती से लगाये रखा है, वही सास अपनी बहू को देखने के लिए सांस रोके पड़ी है और बहू है कि उसे बूढ़िया की कोई चिन्ता ही नहीं है। बूढ़ा सोच नहीं पा रहा था कि वह बुढ़िया के पास जाकर क्या कहेगा। ज्ञानदा के न आने का क्या कारण बतायेगा।

मुखर्जी के प्रस्थान के समय गोलोक ने उन्हें विदा के रूप मे राह-खर्च देना चाहा, जिसे उन्होंन लेना स्वीकार नहीं किया। गोलोक ने ज्ञानदा के उनके साथ न जाने पर गहरा दुःख और आश्चर्य भी प्रकट किया।

बैठक में गोलोक को आया देखकर भट्टाचार्य ने उठकर उन्हें प्रणा किया, तो गोलोक ने केवल सिर हिला दिया।

फिर वह बोले, “हाँ तो बेटे, तुम्हें बुलावा भेजा था।”

मृत्युंजय भट्टाचार्य बोला, “जी हाँ, श्रीमान! सुनते ही आधा-अधूरा निगलकर दौड़ा आया हूँ।”

गोलोक ने कहा, “सो तो ठीक है। तुम लोगों के विवाह-सम्बन्ध तो स्थिर करते हो, किन्तु गाँव और गाँव के लोगों की भी कुछ खबर रखते हो? तुम्हारो बाबा रामरतन शिरोमणि अवश्य इस विषय में आदर्श थे। सारे गाँव की सारी जानकारी उनकी अंगुलियों पर रहती थी।”

मृत्युजंय बुझे स्वर में बोला, “इसमें मेरा क्या अपराध है, मैं भी अपनी ओर से प्रयत्नशील रहता हूँ। अच्छा चटर्जी महाशय, आपने जगदधात्री ब्राह्मणी की लड़की की दुस्साहस की बात तो सुनी होगी। रासू बुआ के मुंह से हमने यह सब सुना है, तो मन करता है कि उन्हें चुल्हे मे झोंक दिया जाये।”

गोलोक ने आश्चर्य प्रकट करते पूछा, “ऐसा क्या कह दिया उसने जरा मैं भी तो सूनुं।”

“अच्छा, तो क्या आपको मालूम नहीं?”

“नहीं, बात क्या है?”

मृत्युजय बोला, “इधर आपका घर सूना है और उघर संध्या का कही जुगाड़ नहीं बैठा रहा। आप अपनी उदारता से उसका उद्धार करने को सहमत थे, किन्तु छोकरी ने बड़े ही क्रुद्ध स्वर में सबके सामने जो कहा, हमें तो वग दोहराते हुए भी लज्जा लगती है। बोली, “घाट के मुरदे के गले मे जूतों की माला अवश्य हाल दूंगी। हमने सुना है कि उसके माँ-बाप ने भी यह सब सुना ही नहीं है, अपितु लड़की की पीठ थपथपायी है।”

सुनकर गोलोक क्रोध से कांपने लगा, किन्तु क्षण-भर में ही अपने को संभालकर उसने सारी बात को हंसी में उड़ा दिया, बोला, “अरे, नासमझ छोकरी है उस मुंहट की बात का क्या बुरा मानना?”

मृत्युजय बोला, “उस मुंहफट की जबान खींच लेती चाहिए। उसे ऐसी छूट देकर ही तो आपने सिर पर चढ़ा लिया है, अन्यथा उसकी माँ नहीं जानती कि आपके द्वारा उसे अपनाने से प्रियनाथ की छप्पन पीढ़ियां तर जायेंगी। इस इलाके में उसका सम्मान कितना बढ़ जायेगा।”

प्रसन्न मन से गोलोस बोले, “भट्टाचार्य जी, गुस्से को थूक दो। यह अनाड़ी लड़की किसी के मान-सम्मान को क्या जाने? समय आने पर सब कुछ समझ जायेगी।”

मृत्युंजय ने पूछा. “क्या आपको रासू बूआ ने कुछ नहीं बताया?”

गोलोक बोले, “क्या आपनी लक्ष्मी को इतनी जल्दी भूलाना सम्भव है? अभी मैं किसी दूसरे विवाह के बारे में सोच ही कहां सकता हूँ, जो रासू बहिन से कुछ कहूंगा? मधुसूदन, रक्षा करो। तुम्हारा ही भरोसा है।”

अब मृत्युंजय के लिए कुछ पूछना संभव न रहा। वह गोलोक के पत्नी-प्रेम पर मुग्ध होकर प्रशंसापरक एवं प्रसन्न द्दष्टि से उसके चेहरे को देखता रह गया।

कुछ देर के बाद गोलोक बोले, “भट्टाचार्य, सच पूछो, तो मैंने कुछ याद रखना ही छोड़ दिया है। लोग दिन-रात मेरे सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं। वे क्या कहते हैं, इसकी भी चिंता छोड दी है। अब लोको मेरे पीछे पड़ जायें कि अमुक कन्या का उद्धार करो, आप नहीं करोगे, तो कौन करेगा-इन कथनों कि कितनी उपेक्षा करूं, आखिर इन्सान हूँ। उदासीनता बरतने पर कभी किसी के सामने मुंह से किसी के बारे मे स्वीकृति अथवा सहमति-जैसी किसी बात के निकल जाने को अस्वभाविक तो नहीं कहा जा सकता।”

सम्बन्ध जोड़ने की कला में कुशल मृत्युंजय ने संकेत समझने में भूल नहीं की। वह मधुर और विनम्र स्वर में बोला, “यदि ऐसा कुछ है तो मेरी प्रार्थना है कि आपको प्राणकृष्ण की लड़की को अपनाने से सहमत हो जाना चाहिए। लड़की रूप-गुण में साक्षात् लक्ष्मी है और उसकी आयु भी तेहर-चौदह के आस-पास है। हाँ, पिता अवश्य निर्धन हैं। आप निर्धन परिवार की लड़की के पुण्य-लाभ को हाथ से मत जाने दीजिये।”

मृत्युंजन को प्यार से झिड़कते हुए गोलोक बोले, “पण्ड़ित, लगता है कि तुम बौरा गये हो। क्या मुझे इस आयु में पुनःविवाह करना शोभा देता है? क्या लड़की चौदह की हो गयी है, उसकी शरीर का विकास तो काफी अच्छा है? सुना है, काफी आकर्षक युवती है।”

उत्साहित होकर मृत्युंजय ने कहा, “आपने ठीक ही सुना है। उसकी एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि वह शान्त और संयत है। लगता है, मानो मुंह में जबान ही नहीं है।”

गोलोक बोले, “रूप-सौन्दर्य और गुण-शालीनता में मेरी लक्ष्मी की तुलना कौन लड़की करेगी? उसके सामने किसी दूसरी लड़की को देखने का मन नहीं करता, किन्तु क्या करू, किसी का दुःख भी तो मुझसे नहीं देखा जाता। अब जब तुम लड़की की तेरह-चौदह वर्ष की आयु बता रहे हो, तो निश्चित है कि वह पन्द्रह-सोलह की अवश्य होगी। तुम उसके पिता के दरिद्र और अभावग्रस्त होना भी बता रहे हो, सुनकर ह्दय द्रवित हो उठता है। ब्राह्मण की विपत्ति देखी नहीं जाती।”

मृत्युजंय बोला, “आपकी उदारता से कौन परिचित नहीं।?”

गोलोक बोले, “किसी कुलीन की कुलीतना की रक्षा की चिन्ता कोई कुलीन व्यक्ति ही कर सकता है। न करना भी कर्तव्या से पतित होने-जैसा पाप-कर्म है। इधर अबी पत्नी-वियोग के दुःख को भूला नहीं पाया आको आयु भी पचास को छूने लगी, किन्तु मन दूसरों के दुःख-संकट को अनदेखा करने को मानता ही नहीं। इसलिए मुंह से “न” नहीं निकलता।”

गोलोक के कथन के समर्थ में मृत्युंजय बार-बार सिर हिलाने लगा।

गहरी सांस लेकर गोलोक बोले, “कुलीन ब्राह्मणों के गाँव में समाज का मुखिया बनना भी कंटो का ताज पहनना है। दिन-भर दूसरों की चिन्ता में किस प्रकार खपना पड़ता है, इसे केवल मैं ही जानता हूँ। किसके पास भोजन नहीं, किसे तन ढकने को वस्त्र चाहिए, किस रोगी की औषधि-उपचार की मांग है-इन्हीं बातों में पूरा दिन चला जाता है। लगता है कि सारा जीवन इस प्रकार मरते-खपते ही बिताना पड़ेगा। अब तुम कहेत हो, प्राणकृष्ण बेचारे गरीब लड़की विवाह की आयु पार करने जा रही है। तेरह-चौदह की आयु तुम बताते हो, जबकि मुझे वह पन्द्र-सोलह से कम ही नहीं लगती। अच्छा, ठीक है, प्राणकृष्ण को एक बार मेरे पास भेजो, उसके लिए कुछ करता हूँ।”

उत्साहित हुए मृत्युंजय ने कहा, “उसे अभी आपके पास भेजता हूँ। भेजना क्या, अपने साथ लेकर आता हूँ।”

गोलोक बोले, “तुमने तो मुझे संकट में डाल दिया। मेरे मुंह से आज तक किसी की सहायता के लिए “न” तो निकलती ही नहीं। फिर गरीब ब्राह्मण, को “न” कैसे कही जायेगी? मधुसूदन, तुम्हीं रक्षा करो। मैं तो उसी तरह नाचता हूँ, जिस तरह तुम मुझे नचाना चाहते हो।”

किसी भूली बात के याद आ जाने पर जाते हुए मृत्युंजय को आवाज देकर गोलोक बोले, “मैं भी केसा भुलक्कड हूँ, जिस बात को कहने के लिए तुम्हें बुलाया था, वह तो मैं कहना भी भूल गया हूँ। कहना यह था कि आजकल थोड़ी तंगी चल रही है, अतः तुम अपने ब्याज का भुगतान...।”

करुण कण्ठ से मृत्युंजय बोला, “इस महीने, तो आप दया की भीख...।”

गोलोक बोले, “कोई बात नहीं, रहने दो। मैं किसी को कष्ट देकर एक पाई वसूल करना भी पाप समझता हूँ, किन्तु हाँ, बेटे, इसके बदले तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।”

“आज्ञा कीजिये, मैं प्रस्तुत हूँ।”

गोलोक बोले, “सनातन हिन्दु धर्म की रक्षा करना और परम्परागत सामाजिक आचार-विचार की प्रतिष्ठा को बनाये रखना कोई बच्चों का खेल नहीं है। इस भार को उठाने बाले व्यक्ति को चौगन्ना और चार आँखों वाला बनकर रहना पड़ता है। जरा-सी भूल हुई कि अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती। प्रियनाथ की माँ के बारे में उन दिनों बहुत सारी उलटी-सीधी बातें सुनने को मिली थी। तुम्हे उसके गाँव जाकर सही बात की पक्की जानकारी गुप्त रूप से मुझ तक पहुंचानी होगी। तुम्हारे बाबा शिरोमणि इस मामले में सिद्धहस्त थे। वह उड़ती चिड़िया के पंख काट लेते थे। बड़े-से-बड़े मक्कार से भी उसके दिल की बात उगलवा लेते थे। बीत-तीस गाँवों के एक-एक आदमी को कच्चा चिठ्ठा उन्हें मालूम रहता था। तुम्हारे इन्हीं बाबा के बल पर भूपति चटर्जी का दस साल तक सामाजिक बहिष्कार जारी रखा और भाई साहब को गाँव छोड़ने पर विवश कर सका। तुम भी अपने बाबा के यश को आगे बढ़ा पाते, तो कुलभूषण कहलाते।”

अपने पूर्वजों के सामने अपनी हीनता की जानकारी मृत्युजंय के लिए सुखद न रही। वह बोला, “चटर्जी महाशय! मैं एक सप्ताह में ही घटना की सही जानकारी ला दूंगा। पाताल से बी सत्य को खोज कर ले आऊंगा।”

मृत्युंजय को उत्साहित करते हुए गोलोक बोले, “जुट जाने पर तुम्हारे लिए कुछ भी कठिन नहीं। मुझे तुम्हारी योग्यता पर पूरा भरोसा है। हाँ, एक बात की ध्यान रखना, किसी को भी इस बात की भनक नहीं पड़नी चाहिए। समाज के मान-सम्मान तथा मर्यादा-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। हाँ, मैं तुम्हारा ब्याज ही नहीं, मूल भी छोड़ दूंगा। यदि तुम अपने कष्ट के बारे में बताते, तो मैं तकाजा ही न करता, किन्तु हाँ, जानकारी एकदम सच्ची होनी चाहिए।”

प्रसन्न होकर मृत्युंजय बोला, “आप ही निर्धनो के पालक एवं आश्रयदाता हैं। मैं आज ही चल देता हूँ और प्रमाणिक जानकारी लेकर आपकी सेवा में उपस्थित होता हूँ।”

चलने के उद्धत मृत्युंजय को रोककर गोलोक बोले, “मुझे किसी बात का श्रेय देने की आवश्यकता नहीं। धन्यवाद करना ही है, तो मधुसूदन का करो, जिनकी कृपा से मुझे कुछ शुभ करने की प्रेरणा मिलती है। मैं तो उनका दासानुदास हूँ, निमित्त मात्र हूँ। असली मालिक तो स्वयं वही है।” कहकर उन्होंने मधुसूदन को लक्ष्य कर सिर झुका दिया।

जा रहे मृत्युंजय को अपने समीप बुलाकर गोलोक बोले, “प्राणकृष्ण को भेजना न भूलना। उस ब्राह्मण का दुःख मुझसे सहा नहीं जा रहा।”

प्रकरण 10

प्रतिष्ठित एवं कुलीन जयराम मुखर्जी के धेवते वीरचन्द्र बनर्जी के साथ संध्या का विवाह होना स्थिर हो गया है। कन्यापक्ष के परिवार में वरपक्ष से लोगों के स्वागत की जोर-शोर से तैयारियां चल रही हैं। अगहन महीने का शुभ मुहूर्त निकला है। बहूत समय बाद जगदधात्री के घर में आनन्दोत्सव हो रहा है, इसलिए उसका उत्साह देखते ही बनता है। वह मिठाई बनाने में लगे हलवाइयों की देख-रेख कर रही है, तो उसकी बूढ़ी सास कालीतारा माला जप रही है। बुढ़िया ने भगवा रंग के वस्त्र पहन रखे है। बुढ़िया बहू से बोली, “क्यों जगदधात्री, संध्या के विवाह में अब दस दिन ही बचे हैं न?”

जगदधात्री बोली, “माँ आज के दिन को छोड़ दें, तो नौ ही दिन बाकी हैं। जब तक सारा काम ठीक ढंग से निबट नहीं जाता, तब कत तो मन को शान्ति मिल ही नहीं सकती।”

सास मुस्कुराकर बोली, “सभी कामों के सम्पन्न होने तक चिन्ता और विध्न-बाधा की आशंका बनी ही रहती है। क्यों बहू, क्या तुम अपनी लक्ष्मी-जैसी-रुप-गुणी-सम्पन्न बेटी को पानी में नहीं बहा रही हो?”

जगदधात्री बिना उत्तर दिये अपना काम निबटाने में जूटी रही। सास फिर बोली, “बहू, घर आकर जब मैंने संध्या को थोड़ा-सा टटोला, तो उसके दुःख से मेरी तो छाती फटी जा रही

है। तुम माँ होकर भी अपनी बेटी के मन की न जान सकीं। अरुण जैसे हीरे को छोड़कर कंकर को तुमने कैसे पसंद कर लिया?”

जगदधात्री बोली, “मैं संध्या के दिल की सारी बात को ठीक से जानती-समझती हूँ, किन्तु क्या करूं, जब यग सम्भव ही नहीं, तो फिर” रूककर वह धीरे से बोली, “माँ जी, कामकाज का घर है, कहीं किसी के कान् में कुछ पड़ गया, तो अनर्थ हो जाएगा।”

सास तो एकदम चुप हो गयी, किन्तु अपने ऊपर नियन्त्रण न कर पाती जगदधात्री बोली, “माँ, यह बताओ कि यदि मैं अरुण का पक्ष लेती, तो क्या तुम्हारे लिए इस सम्बन्ध को स्वीकार करके अपने कुल को कलंकित करना सम्भव होता? क्या तुम इस सम्बन्ध को मान्यता देतीं? क्या तुम अपनी जाति की रक्षा को तत्पर न होती?”

जगदधात्री सोचती थी कि यह सुनकर सास को सांप सूंघ जायेगा, किन्तु सास बोली, “बहू, तुने मुझसे कहा तो होता। अरी, तुम उसे छोटी जाति का कहती हो, वह विद्या-बुद्धि में ही उच्च नहीं, अपितु जाति की ददष्टिसे भी श्रेष्ठ है। तुमने जिन दो स्त्रियों को छोटी जाति की होने के कारण अपने घर से भगा दिया, उसने तो उन्हें आश्रय देकर अपनी महानता सिद्ध कर दी। ऐसे महापुरुष को भी तुम छोटी जाति का कहती हो? यह तो बड़ी विचित्र बात है।”

जगदधात्री क्रुद्ध स्वर में बोली, “क्या दूले, डोम आदि अनाथ होने के कारण ब्राह्मणों के साथ रहने के अधिकारी बन जाते है? क्या शास्त्रों का यही विधान है?”

सास ने कहा, शास्त्रों की बात तो शास्त्रकार जानते होंगे, किन्तु मैं तो अपनी व्यथा-कथा को जानती हूँ। छोटी जाति के लोगों से धृणा करनेक का भगवान क्या द्ण्ड देते हैं, यदि तुम मेरे साथ बीती घटना से परिचित होतीं, तो यह थोथा अभिमान कदापि न करतीं। तुझे यह समझ आ जाती कि जाति के आधार पर ऊंच-नीच का विचार करना ओछा और निन्दनीय है। यदि तुम्हें जाति-प्रथा के दोषों की थोड़ी सी भी जानकारी होती, तो तू अपनी बेटी को इस तरह गड्ढे में न धकेलती।”

क्रुद्ध स्वर में जगदधात्री बोली, जिस कुलीनता से सारा संसार चिपका हुआ है, वह क्या धोखा की टट्टी है?

सूखी हंसी हंसकर बुढ़िया बोली, बेटी यही वास्तविकता है। यह सब हम जैसे असहाय लोगों के गले मे फन्दा है। समर्थ लोग इसकी परवाह ही कहां करते हैं? मैंने धूप में बाल सफेद नहीं किये, दुनिया को खुली आँखों से देखा है। मेरी एक बात याद रखना, झूठ को सम्मान देकर ऊंचा उठाने की कितनी भी चेष्टा करो, उसे तो मुंह के बल गिरना ही है, असल में देखा जाये तो यही सब कुछ हो भी रहा है।"

"उत्तर देने जा रही जगदधात्री लड़की को आते देखकर चुप हो गयी। बगीचे में पौधों को पानी देकर लौटी संध्या ने अपने हाथ के संकेत से माँ को दिखाकर पूछा, माँ, क्या यह चन्द्रपूली नाम ही मिठाई है?" अबी माँ ने मुंह ही नहीं खोला था कि वह दादी से बोली, "दादी जी, सबके यहाँ जब इस अवसर पर लड्डु बनते हैं तो हमारे यहाँ क्यो नहीं बने?"

दादी प्यार से बोली, "यह तो अपने बाबू जी से पूछना।"

संध्या बोली, "क्या दादी, क्या तुमने इस बारे में कभी अपनी सास से नहीं पूछा था?"

अरे बेटी, ससुराल का मुंह देखना नसीब होता, तो कुछ पूछने की नौबत भा आती।

संध्या ने पूछा, "क्यों दादी, कुल मिलाकर तुम्हारी सौतिने कितनी थी? एक सो, दो सो या तीन सो?"

हंसती हुई दादी बोली, "ठीक से तो कुछ मालूम नहीं, किन्तु तुम जितनी बी हो कहो, उतनी हो सकती हैं। आठ साल की आयु में जब मेरा ब्याह हुआ था, तब उनकी पहले से छियासी स्त्रियां थी। उसके बाद भी उनके बहुत विवाह हुए, इसकी सही गिनती न उन्हे मालूम थी और न मुझे मालूम है।"

हंसती हुई संध्या बोली, "क्या दादा ने कहीं अपने विवाहों का रिकोर्ड नहीं रखा होगा? यदि कहीं वह रजिस्टर तुम्हे मिल जाता, तो अपनी सौतिनों के नाम पते से उनकी खोज खबर

तो ले लेती। फिर पता चलता कि मेरे कितने ताऊ, चाचा, भाई, बहिन आदि हैं। उनमें से बहुत सारे तो अब भी होंगे। यदि कहीं उनका पता चल जाता, तो मजा आ जाता।"

थोड़ा हंसकर संध्या ने पूछा, "दादा तुम्हेर पास आ जाते, तो क्या तुम्हे मोलतोल करना पड़ता था? इस तकरार में तो तुम्हें बड़ा मजा आता होगा। फिर तुम्हें आखिर कितने रुपये देने पड़ते थे?"

जगदधात्री नाराज होकर बोली, "बेटी, यह चुलबुलापन छोड़ और ठाकुर जी की पूजा की तैयारी कर।"

दादी बोली, "लोगों को सब मालूम है, परन्तु फिर भी न जाने क्यों इस बुराई से पिण्ड नहीं छुडाते।"

जगदधात्री को यह सारी चर्चा शरू से ही नापसन्द थी, अब सास के रुख को देखकर वह बोली, "तब की बातें और थी, मालूम नहीं, कितना सच है और कितना झूठ, किन्तु आज तो न किसी के इतने विवाह होते हैं और न ही स्त्रियां अत्याचार का शिकार होती हैं। उस समय कुछ लोगों द्वारा अत्याचार किये जाने की बात सत्य भी हो, तो भी इसे गौरव कभी नहीं मिला होगा।"

संध्या ने दादी के और अधिक निकट आकर सहानुभूति और आत्मीयता से भरे मधुर स्वर में पूछा, "दादी वे लोग इस प्रकार का अत्याचार क्यों करते थे? क्या उनमें मानवता का नितान्त अभाव था?"

संध्या को अपनी छाती से चिपकाती हुई दादी गहरी और ठण्डी सांस छोड़कर बोली, "बेटी, एक रात का पति अपनी किस-किस पत्नी के प्रति ममता, आत्मीयता और स्नेह दिखाएगा? अब तुम अपने सम्बन्ध में ही सोचकर देखो, तुम्हारे साथ जो होने जा रहा है, क्या उसे एक दुर्घटना अथवा अत्याचार नहीं कहा जा सकता?"

ऊबी गयी जगदधात्री उठकर खड़ी हो गयी और तीखी आवाज में बोली, "तू बातें ही करती रहेगी, तो ठाकूर जी की पूजा का काम मुझे ही निपटाना पड़ेगा।"

संध्या ने माँ के तमतमाते चेहरे को देखकर भी उठने की कोई चेष्टा नहीं की। वह बोली, “दादी, इतने अधिक समय से प्रचलित और समाज द्वारा मान्यता प्राप्त किसी प्रथा को सहसा नष्ट होते देखकर क्या किसी के दुःख नहीं होता।”

दादी बोली, “किसी प्रथा का प्रचलन तथा समाज द्वारा स्वीकृति उस प्रथा के उत्तम होने का आधार कदापि नहीं। किसी भी प्रथा के गुण-दोष की समय-समय पर जांच-परख करते रहेना चाहिए। सत्य से आंख चुराने बाला ही अपनी मृत्यु को निमन्त्रण देता है। बेटी, मैं अपने पापों का वर्णन अपने मुंह से नहीं कर सकती , किन्तु जिस दारुण ज्वाला में मुझे जलना पड़ा है, उस केवल मैं ही जानती हूँ।”

संध्या को अपने समीप बिठाकर कालीतारा बोली, “किसी समय समाज के ठेकेदारों ने ब्राह्मणों के गुणों के आधार पर उन्हें आदर्श एवं कुलीन मान लिया था, किन्तु समय बीतने पर ब्राह्मणों के वंशघर सभी दोषों से लिप्त होते गये और उनका आचरण शुद्रों के आचरण से भी निकृष्ट हो गया, किन्तु समाज-व्यवस्था नहीं बदली। यही सारे अनर्थों की जड़ है। बेटी, जिस जाति-प्रथा पर तुम इतना गर्व करती हो, यदि तुम उसके भीतर की गन्दगी को देख पातीं, तो तुम्हें अपने को ब्राह्मण कहलाने मे लज्जा होने लगती। जिन अनाथ दूलो को तुमन् केवल छोटी जाति का होने के कारण अपने मुहल्ले से निकाल दिया है, अपने इस आचरण पर तुम्हें लज्जित होना पड़ता।”

जगदधात्री को यह चर्चा इतनी अधिक अप्रिय और अरुचिकर लगी कि उसे और अधिक सुनना सहन नहीं हुआ, इसलिए वह वहाँ से उठकर चुपचाप दूसरे कमरे में चली गयी। उसे लगा, मानो उसकी सास अपने साथ हुइ किसी अत्यन्त निन्दनीय आचरण को दिल में छुपाते-छुपाते तंग आ चुकी है और कोई अत्यन्त कटु प्रसंग बाहर आने के लिए उसकी छाती को विदीर्ण करने की चेष्टा कर रहा है। अचानक यह सोचकर वह व्यथित और चिन्तित हो उठी कि उसके ससुर के बहु-विवाहों के साथ उसका तो कोई गहरा सम्बन्ध नहीं है?

कुछ देर की चुप्पी के बाद संध्या ने पूछा, “क्यों दादी, क्या हमारे हिन्दु समाज में अनाचार बहुत गहरे घुस गया है और क्या इस समाज को छल-कपट, ढ़ोंग और दिखावे ने एकदम खोखला कर दिया है?”

यह समाज बाहर से कैसा और भीतर से कैसा है, इसके दोहरे रूप को मेरे सिवाय और कौन इतनी अच्छी तरह से जानता होगा?” कहती हई दादी की आँखों से झरते आँसू शाम के धुंधल में भी छिप नहीं सके। आँचल से अपनी आँखें पोछती दादी बोली, “बेटी, अब आजकल मेरी सोच के बारे में क्या तुम कुछ अनुमान लगा सकती हो? जाति-भेद के नाम पर मनुष्य-मनुष्य में अन्तर करने की प्रवृत्ति स्वार्थो और धूर्त मनुष्यों की देने है। इसमें भगवान को घसीटना मनुष्य की दूसरी बड़ी चालाकी और धूर्तता है। स्वार्थी मनुष्य एक-दूसरे में भेदभाव की खाई को जितनी गहरी करता जाता है, लड़ाई-झगडे और ईर्ष्या-द्देष की प्रवृत्तियां भी उसी स्तर पर गहरी जड़ जमाती जा रही है, इसीलिए समाज अनेक बुराइयों का अड्डा बनता जा रहा है।”

इसके बाद दादी और पोती चुप हो गयी। संध्या को यह तो स्पष्ट हो गया कि उसके दादा के बहु-विवाहों के कारम दादी द्वारा भोगी किसी विषम वेदना की स्मृति आज भी उसे काफी व्यथित किये हुए है। इसलिए दादी को और अधिक कुरेदना संध्या को अच्छा नहीं लगा।

दादी बोली, “बेटी, माँ को व्यर्थ में क्यों खिजाती हो? जाकर ठाकुरद्वारे का काम क्यो नहीं निबटा देती हौ?”

संध्या बोली, “दादी चिन्ती मत करो, माँ अपने-आप सब कर लेगी।” कहकर वह दादी का हाथ पकड़कर उसे खींचती हुई बोली, “दादी, तुम्हारे जमाने की बातों को सुनना बड़ा अच्छा लगता है। मेरे कमरे में चलकर कुछ और सुनाओ न।” कहती हुई दादी को अपने साथ करमेर में ले गयी।

प्रकरण 11

जाड़े का मौसम होने से पहर रात बीतते ही गाँव में सन्नाटा छा गया था। ज्ञानदा अपने कमरे में टिमटिमाते दीये की रोशनी में धरती पर बैठी हुई थी। साथ बैठी रासमणि अपना

हाथ हिलाकर ज्ञानदा को समझा-बूझा रही थी, “बेटी, मेरा कहना मान, दवा पी ले, न पीने की हठ मत कर। दवा पीने से तू फिर से पहले जैसी बन जाएगी, किसी को भनक तक न पड़ेगी।”

आँसू बहाती ज्ञानदा रुंधे कण्ठ से बोली, “जीजी, तुम भी अजीब हो, एक पाप के बाद दूसरा पाप करने को कह रही हो। इससे तो मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।”

डाटती हुई रासो बोली, “तो क्या इतने उज्जवल कुल को कलंकित करने पर तुम्हें स्वर्ग लाभ होगा? तुम्हें अब वही करना होगा जिसमें चटर्जी महाशय की और तेरी अपनी भलाई है। क्या तुम अपनी हठधर्मिता का परिणाम जानती हो? लोग तुम्हें कुलटा कहकर तुम पर तो थू-थू करेंगे ही, चटर्जी की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा भी मिट्टी में मिल जायेगी।”

हाथ जोड़कर ज्ञानदा बोली, “यह दवा मैं बिल्कुल नहीं खाऊंगी। मुझे लगता है कि तुम लोग मुझे विष देकर मुझसे छुटकारा पाने का विचार बना चुके हो?”

रासमणि चिढ़ाने के स्वर में बोली, “अब पता लगा की जीवन के प्रति मोह के कारण दवा नहीं खाती। जब यही सत्य है, तो फिर धर्म की दुहाई काहे को दे रही हो?”

ज्ञानदा बोली, “तुम लोग मुझे विषपान के लिए क्यों विवश कर रहे हो?”

“क्या तुम-जैसे निर्लज्ज कही विष से मरते है?”

फिर पल-भर में पासा पलट कोमल-मधुर स्वर में धूर्त रासमणि बोली, “तुम्हारा दिमाग खराब हो गया लगता है? तुम्हें विष देकर क्या हमें जेल में सड़ना है? रासो ब्राह्मणी तेरे प्राण लेगी-ऐसा तूने सोच बी कैसे लिया? मैं तो तेरे भले के लिए तेरे पेट मे पल रहे तेरे दुश्मन को निकाल बाहर फेंकने को कह रही थी। उसके बाद तू फिर से पवित्र जीवन जी या जीवन के सुख भोग, यह सब तुम्हारे ऊपर है, चाहे, तो तीर्थ में जाकर व्रत उपवास से जीवन सफल कर। इस बात का पता किसी को लगना ही नहीं है।”

सिर झुकाकर बैठी ज्ञानदा कुछ नहीं बोली। रासमणि ने साहस कर पूछा, “क्यो बहिन, दवाई लाऊं?”

सिर नची किया ज्ञानदा बोली, “मैंने दवा बिल्कुल नहीं लेनी है; क्योंकि मुझे पूरा यकीन है की दवा पी लेने पर मेरा अन्त निश्चित है।”

रासमणि उत्तेजित हो उठी और बोली, “ज्ञानदा, तेरा यह हठ तो संसार की सब स्त्रियों से एकदम न्यारा है। यदि दवा नहीं लेती तो फिर यहाँ से चलती बन। यदि पुरुष से एक गलती हो भी गयी, तो स्त्री को ऐसी हठधर्मिता शोभा नहीं देती। जो होना था वह तो हो लिया। यदि तू गर्भपात नहीं कराना चाहती, तो पचास रुपये लेकर काशी-वृन्दावन जैसे किसी तीर्थ पर चली जा। तेरे चले जाने पर उन पर तो कोई अंगूली नहीं उठाएगा। फिर रुपये भी तो थोड़े नहीं हैं। इतनी बड़ी राशि है कि क्या कहना?”

ज्ञानदा बोली, “दादी, मुझे रुपयों का कोई लालच नहीं। रुपयों का मुझे करना भी क्या है? तुम तीर्थ जाने की कहती हो, तो मेरा कही किसी से कोई परिचय ही नहीं है। जाऊं बी, तो किससे पास जाऊं?”

“यह तो तुम्हारा हम लोगों को परेशान करने का झूठा बहाना हुआ। तीर्थों पर जाने के लिए क्या किसी जान-पहचान की आवश्यकता होती है?”

ज्ञानदा बोली, “कल चटर्जी का प्राणकृष्ण की लड़की से विवाह होना है, इसलिए तुम मुझे आज ही घर से बाहर करना चाहती हो। मैं दूध पीती बच्ची नहीं हूँ, तुम्हारी चाल को भली प्रकार से जानती हूँ।”

कहती हुई वह बिलखने लगी और हाथ जोड़कर भगवान से विनती करती हुई कहने लगी, “प्रभो, तुम इजने लोगों का अपने यहाँ आश्रय देते हो, किन्तु मेरे लिए तुम्हारे द्वार क्यों बन्द है? प्रभो! बचपन से मैंने कभी कोई पाप नहीं किया, यह पाप भी मैंने अपनी इच्छा से नहीं किया, फिर भी, क्या मुझ असहाय से हुए इस पाप का सारा जिम्मा मुझ पर है? क्या मैं ही अकेली इसके लिए उत्तरदायी हूँ?”

भगवान के नाम पर ज्ञानदा द्वारा दी जा रही इस दुहाई से रासमणि का क्रोध सातवें आसमान पर जा पहुंचा। वह गरजती हुई बोली, “चुडैल, शाप देती है, झाड़ू मारकर यहाँ से निकाल बाहर करूंगी। तू क्या दूध पीती बच्ची है, जो तुझे परिणाम का पता नहीं था या

फिर तुझसे बलात्कार किया गया है? यदि तू तैयार न होती, तो चटर्जी की क्या हिम्मत थी कि वह तुझे छू भी पाते। और इशारे करे, तो फिर मर्द को कैसे दोष दिया जा सकता है? अब बड़ी सती बनती है, जरा दर्पण में अपना चेहरा तो देख।"

ज्ञानदा इस आरोप का भला क्या उत्तर देती? वह चुपचाप आँसू बहाने लगी। रासमणि फिर कोमल कण्ठ से बोली, "देख, यदि तू केवट बहू की औषधि नहीं लेना चाहती तो न ले। क्या प्रियनाथ की औषधि ले सकेगी। वह तो भले आदमी हैं।"

ज्ञानदा बोली, "क्या वह दवा देंगे?"

"चटर्जी भैया इनकार तो नहीं कर सकेंगे? उन्हें बुलवा भेजा गया है, शायद आते ही होंगे। उनकी दवा का न लेना मुझसे नहीं देखा जा सकेगा।"

ज्ञानदा चुप थी, इससे उत्साहित होकर कुछ और कहने जा रही रासमणि जूतों की आवाज सुनकर चुपचाप आगन्तुक की बाट जोहने लगी।

प्रियनाथ करमे के भीतर आये, तो अंधेरा देखकर बोले, "अरे, यहाँ तो किसी को दिया-बत्ती जलाने तक की फूरसत नहीं हैं।" बगल की पुस्तके और हाथ के बक्से को नीचे रखते हुई बोले, "ज्ञानदा, आज तबियत कैसी है?"

ज्ञानदा को धरती पर बैठा दखकर वह बोली, "अरी, इस ठण्ड में नंगी धरती पर बैठना ठीक नहीं है। दवाई बदलनी पड़ेगी।" रासमणि को देखकर वह बोले, "मौसी, तुम कब आयी हो? तुम्हारी नातिन कल राह में मिल गयी थी, उसका स्वास्थ्य तो सामान्य नहीं लगता। मुझे तो मरने की भी फूरसत नहीं, मैं किस-किस की चिकित्सा करूं। मौसी, कल सवेरे घर पर अवश्य आना, लड़की का विवाह है न। कल तो मुझे बी घर पर रहना होगा, मरीजों की चिन्ता में अबी से धुला जा रहा हूँ। असल में लोग प्रियनाथ को छोड़कर विपिन-जैसे किसी दूसरे डाक्टर से चिकित्सा कराना ही नहीं चाहते? सोचता हूँ की यदि यही चलात रहा, तो ईन लोगों की आजीविका कैसे चलेगी? पंचू ग्वाला सर्दी का शिकार हो गया है, उसे देखने भी जाना है ज्ञानदा अपनी नब्ज दिखा।"

ज्ञानदा ने न हाथ आगे बढ़ाया और न ही कोई उत्तर दिया। रासमणि ने पूछा, “प्रियनाथ, तुम्हारी समझ में ज्ञानदा को कौन सा रोग है?”

ज्ञानदा के चेहरे पर देखते हुए प्रियनाथ ने कहा, “इसे अपच हो जाने से अम्ल-विकार हो गया है।”

रासमणि का इनकार में सिर हिलाना प्रियनाथ को अपने ज्ञान और अनुभव का प्रश्नचिह्न लगाने-जैसा अप्रिय प्रतीत हुआ। वह चिन्तित होकर बोले, “मेरे उपचार में सन्देह क्यो कर रही हो? क्या किसी अन्य डॉक्टर ने आकर कुछ और बता दिया है? जरा उसका नुस्खा अथवा दवा तो देखूं?”

रासमणि मुंहफट औरत है, उसे जो कहना होता है, एकदम बोल देती है, न भूमिका बांधने की चिन्ता करती है, न उचित-अनुचित का विवेक करती है, किन्तु आज उसे अपने स्वभाव के विपरीत सावधान होना पड़ा और वह बोली, “बेटा, किसी औक डॉक्टर को बुलाने जैसा कोई बात नहीं। तुम-जैसे धन्वन्तरी के सामने कोई वैध-डॉक्टर टिक ही कहां सकता है? चटर्जी भैया तो तुम्हें बहुत मानते है। वह तुम्हें छोड़कर और किसी को बुलाते ही नहीं हैं।”

फूलकर कुप्पा हुए प्रियनाथ बोले, “इधर के डॉक्टर तो मेरे सामने छोकरे हैं। इन अधकचरों को तो में दस साल तक पढ़ा सकता हूँ।”

बिलखती हुई रासमणि बोली, “बेटा, लड़की से एसी एक भूल हो गयी है, जिसे अपने विश्वास के आदमी के सिवाय दूसरे से कहा नहीं जा सकता।”

प्रियनाथ उत्तेजित होकर बोले, “मेरे रहते किसी और से कुछ कहने की आवश्यकता कहां है? हाँ, ठीक होने में थोड़ा समय अवश्य लग सकता है, किन्तु मेरी दवा की दो खुराकें काफी होती हैं, तीसरी की आवश्यकता ही नही पड़ती। क्यो ज्ञानदा! क्या मेरी दवा की दो बूंदों से तुम्हारा जी मचलाना ठीक हो गया था या नहीं?”

ज्ञानदा शर्म से मेरी जा रही थी। रासमणि बोली, “बेटे, ज्ञानदा को तेरे सिवाय किसी पर भरोसा ही नहीं है? तुम्हारी दवा को यह अमृत मानती है, किन्तु इसका रोग दूसरा है, अभागिनी का जी ही नहीं मचल रहा, इसे उल्टियां भी आ रही हैं।”

प्रियनाथ ने कहा, “उल्टियां, लो एक ही खुराक से रोक देता हूँ। अब घबराने की कोई बात नहीं।”

माथा पीटती हुई रासमणि बोली, “प्रियनाथ! क्या तुम बुद्ध हो, जो किसी संकेत को समझते ही नहीं हो? अरे, यह कुछ गलती कर बैठी है, ऐसी दवाई दो जिससे कलंक लगने से बच जाये?”

डॉक्टर के चेहरे को देखकर रासमणि को स्पष्ट हो गया कि इस बुद्ध को अबी तक ठीक से कुछ समझ नहीं आया। सारी बात साफ बताने के लिए वह प्रियनाथ को एक कोने में ले गयी और धीरे-धीरे उसके बारे में जो कुछ कहा, उसे सुनते ही वह बिदक उठा।

मौसी खुशामद करती हुई बोली, “बेटे, कोई ऐसी कारगर दवला दो कि जिससे गोलोक चटर्जी के उज्जवल चरित्र पर कलंक न लग सके। अरे, समाज के शिरोमणि तथा धर्मावतार गोलोक चटर्जी की रक्षा करतना क्या हमारा-तुम्हारा धर्म और कर्तव्य नहीं है।”

प्रियनाथ परेशान होकर बोला, “मौसी, यह मुझसे नहीं होगा। तुम किसी दसरे ड़ाक्टर को बुला लो।”

सुनकर चकित हुए रासमणि बोली, “प्रियनाथ! तुम यह क्या कह रहे हो? क्या यह बात किसी दूसरे से की जा सकती है? तुम अपने आदमी हो, ब्राह्मण हो, अपने धन्धे के धन्वन्तरी हो, तुम्हीं को उद्धार करना है।”

प्रियनाथ के मुंह खोलने से पहले ही चुपके से दरवाजा खोलकर गोलोक कमरे में आ पहुंचे और विनम्र स्वर से बोले, “यह लड़की दूसरों की दवा को विष मानती है। अब तुम्हारा ही सहारा है, तुम्हीं को इसका उद्धार करना है।”

प्रियनाथ बोला, “आप लोग किसी और डाक्टर को बुला लीजिये। मैं जोखम के काम नहीं करता। मुझे इस प्रकार के रोगों की और उनके उपचार की जानकारी नहीं है।” यह कहकर प्रियनाथ अपना बक्सा उठाकर चलने लगा।

गोलोक ने प्रियनाथ को पकड़कर रोने-जैसी आवाज में कहा, “प्रियनाथ यह बूढ़ा तेरे आगे हाथ जोड़कर अपने सम्मान को बचाने की विनती करता है। यदि मैं जानता कि तुम मेरी बात को नहीं रखोगे, तो मैं तुम्हें बुलाता ही नहीं। अब तो मेरा मान-सम्मान सब तुम्हारे हाथ मे हैं।”

अपना हाथ छुड़ाकर प्रियनाथ बोले, “आप मेरे लिए आदरणीय है, किन्तु फिर भी मैं जीवहत्या नहीं कर सकता। मेरी वैधक मुझे इसकी अनुमति नहीं देती। मैं परलोक में इसके लिए क्या उत्तर दूंगा? नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।”

दरवाजे के पास खिसक गये गोलोक पलक झपकते ही दीन से दानव बन गये। एक क्षण पहले गिड़गिड़ाने वाले चटर्जी अब गरजने गले, “इतनी रात गये तुम एक सम्मानित व्यक्ति के घर किसलिए घुसे हो, मैं तुम्हें जेल भिजवाऊंगा।”

प्रियनाथ पहले तो घबरा गये, फिर संभलकर बोले, “वाह, बुलाकर पूछते हो कि किसलिए आया हूँ? डाक्टर के साथ ऐसा मजाक अच्छा नहीं होता।”

चिल्लाकर गोलोक बोले, “हरामजादे, पाजी, तुझे डाक्टरी कहां से आती है और तुझे इलाज के लिए कौन बुलाता है? लुच्चे, लफंगे, तू तो चोरों की तरह पिछवाडे के दरवाजे से भीतर घुसा है। रिश्ते का खयाल न होता, तो तुझे यही धरती में गाड देता।”

इसके बाद ज्ञानदा की और उन्मुख होकर वह बोले, “हरामजादी, कमीनी, अन्धा ससुर रो पीटकर चला गया और बूढ़ी सास मर रही है। मैंने खुशामद की, किन्तु यह कुतिया यहाँ से टलने का नाम ही नहीं लेती। अब क्या मुझे भ्रष्ट करके भी तुझे चैन नहीं पड़ा, जो आधी रात को इस जवान को बुलाकर पिछले दरवाजे से अन्दर घुसा लिया। सवेरा होते ही तेरा सिर मुंडवाकर गाँव से बाहर न निकाला, तो मेरा नाम भी गोलोक नहीं।”

ज्ञानदा को होश नहीं कि उसके सिर पर के कपड़ा कब खिसक गया। वह तो यह सारा तमाशा देखकर पत्थर बन गयी थी। गोलोक के दोनों रूप देखकर वह समझ नहीं पा रही थी कि इस नरपिशाच की वास्तविकता क्या है?

रासमणि को सम्बोधित करते हुए गोलोक ने कहा, "बहिन, इनका हाल तो तुमने अपनी आँखों से ही देख लिया है। दस गाँव के समाजों के सरपंच पर मिथ्या आरोप लगाते इस हरामजादी ने यह नहीं सोचा कि डायन भी चार घर छोड़ देती है। अरी, दूसरे का पाप मेरे सिर क्यों मढ़ती है?"

रासमणि ने कहा, "भैया, इसी को तो कलयुग कहते हैं।"

गोलोक बोला, "अब तू गवाह रहना।"

रासमणि बोली, "मैं तो फारिंग होकर ज्ञानदा की सुध लेने आयी थी। मुझे क्या मालूम कि इसने प्रियनाथ से समय बांध रखा है।"

ज्ञानदा चुपचाप फटी आँखों से सब देखती रही। प्रियनाथ स्तब्ध खड़ा था। गोलोक ने उसके हाथ की किताबों और बक्से को छीनकर सड़क पर फेंक दिया। इसके बाद उसे बी धक्का देकर घर से बाहर निकाल दिया। वह गरजते हुए और डांटते हुए बोले, "रामतनु बनर्जी का लिहाज कर रहा हूँ। तु उसका दामाद न होता, तो आज तू चार आदमियों के कन्धे पर सवार होकर घर जाता।"

यह कहकर गोलोक ने प्रियनाथ को जोर का एक और धक्का दिया।

इधर शोरगुल सुनकर नौकर भागे हुए इधर आ गये, तो उनके बीच में रास्ता बनाकर गोलोक चलता बना।

प्रियनाथ मुंह से एक शब्द भी न बोल सका। नौकर-चाकर तमाशा देखरर वापस चले गये। रासमणि भी अपने घर को चल दी। प्रियनाथ भी उदास चेहरा लिये सड़क पर पड़ी अपनी पुस्तकों और बक्से को उठाकर घर को चल दिये।

जड़मूर्ति बनी ज्ञानदा अकेली कमरे में चुपचाप बैठी रह गयी।

प्रकरण 12

अगहन महीने में आज के दिन बाद बहुत समय तक विवाह का शुभ मुहूर्त न निकलने के कारण आज दिन-भर चारों ओर शहनाई का मधुर नाद कानों में पड़कर आनन्दित कर रहा है। लगता है कि इस छोटे से गाँव के चार-पाँच घरों में विवाह का आयोजन है। संध्या का विवाह भी आज ही हो रहा है। अरुण अपनी जन्मभूमि और अपने मकान को छोड़ने के इरादे को अमल में नहीं ला सका है और पहले की तरह ही वह अपने काम-धन्धे पर भी जाने लगा है। उसके बाहरी जीवन में किसी प्रकार के परिवर्तन के न दिखने पर भी उसकी मानसिकता अवश्य बदल गयी है। अब उसे अपने देश के प्रति किसी प्रकार का कोई लगाव नहीं रहा। वह लोक-कल्याण के सबी कार्यो से अपना नाता तोड़ चुका है। वह गाँव का उपेक्षित व्यक्ति समझा जाता है, इसीलिए इतने घरों में हो रहे विवाह उत्सव पर उसे कहीं से कोई निमन्त्रण नहीं मिला है। ऐसा लगता है उसे समाज से बहिष्कृत मानकर सभी ने उसके लिए अपने दरवाजे बन्द कर दिये हैं।

वह अपने दोमंजिले मकान के अध्ययन-कक्ष में बैठा है, जोड़ का मौसम है, शाम का समय है और ठण्डी हवा चल रही है, किन्तु फिर भी उसने अपने मकान के द्वार बन्द नहीं किये हैं। साफ आसमान पर चमकते चन्द्रमा की शुभ्र चांदनी कमरे में झांकती प्रतीत हो रही है। मकान के आंगन में उगे नारियल के पेड़ों और पत्तों पर छिटकी चांदनी बड़ी प्यारी लग रही है। अरुण इस दृश्य की मनोरमा में खोया न जाने क्या सोच रहा है? उसने भोजन के लिए पूछने आये रसोडये को “भूख नहीं” कहकर लौटा दिया सामने दीवार पर लगी घड़ी ने ग्यारह बजने और सोने का समय होने का संकेत दिया, किन्तु सोने की इच्छा न होने पर वह अविचलित भाव से वहीं स्थिर बैठा रहा

इसी समय अचानक किसी के द्वार किवाड़ के थपथपाये जाने की आवाज सुनी, तो उसे आश्चर्य हुआ; क्योंकि इस प्रकार के छोटे गाँव में इतनी देर मे कोई किसी के यहाँ आता जाता नहीं। उसकी इच्छा तो “कौन है?” पूछने की हुई, किन्तु उत्साह नहीं बन सका।

अरुण को अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी, रेशमी साड़ी की तेज होची खस-खस की आवाज उसके समीप आ पहुंची औस इसके साथ ही कोई महिला उसके पैरों से लिपट गयी।

घबराकर उठ खड़े हुए अरुण ने चांदनी में महिला के रंगीन रेशमी वस्त्र देखे, तो साड़ी में लिपटी महिला को पहचानने में उसे देर नहीं लगी। वह इस प्रकार घबरा गया कि उसके चेहरे का रंग उड़ गया और दिल की धड़कन बहुत अधिक बढ़ गयी। लगभग आधी रात में अपने सूने घर में किसी सजी-धजी रूपवती युवती के आने पर उसे सूझ नहीं रहा था कि उसे क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना चाहिए?

अरुण के कुछ सोचने से पहले ही उस सुन्दर युवती के फूट-फूटकर रोने के कारण उसका मन एक साथ व्यथित और चिन्तित हो उठा। वह परेशान था कि यह सब क्या है?

दो-तीन मिनिटों तक स्तब्ध खड़ा रहने के बाद अरुण संभला और उसने पूछा, “संध्या, मामला क्या है?”

अरुण से अपनी बात कहने के लिए संध्या ने अपने सिर को ऊपर उठाया, तो उसके रूप-सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहे उसके रेशमी वस्त्र और आभूषण चांदनी में चमक उठे। अरुण ने अपने जीवन में सौन्दर्य की ऐसी अनोखी छटा कभी नहीं देखी थी, इसलिए उसका मुग्ध हो उठना स्वभाविक था। साथ ही संध्या के ढलकते आंसुओं के विह्वल हो उठा अरुण संध्या के चेहरे पर देखता ही रह गया।

संध्या बोली, “मैं विवाह की बेटी से उठकर तुम्हे अपना जीवन साथी बनाने और वर के खाली पड़े आसन पर बिठाने के लिए स्वयं आमंत्रित करने आयी हूँ। आज यह सब करते हुए न मैं अपने को भयभीत, न लज्जित और न ही किसी प्रकार से अपमानित अनुभव कर रही हूँ। इस समय मुझे तुम्हारे सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति अपना सगा नहीं लगता। तुम्हीं से अपने उद्धार की आशा लेकर आयी हूँ। तुम मेरे साथ चलो।”

अरुण ने पूछा. “कहा चलूं?”

विवाह-मण्डप से उठ गये वर के आसन पर बैठने के लिए मेरे घर चले।

सुनकर दुःखी और परेशान हुआ अरुण पूरे मामले को जानने के लिए उत्सुक हो उठा। उस अनुमान तो हो गया कि किसी मामले पर झगड़ा हो जाने के कारण वरपक्ष वालों ने विवाह करने से इन्कार कर दिया है। हिन्दुओं में ऐसा होना असामान्य बात नहीं थी। शायद संध्या उसी खाली हुइ आसन पर मुझे बिठाने की बात कर रही है; क्योंकि वर के बिना तो वधू का विवाह सम्पन्न नहीं हो सकता।

अरुण को स्वयं संध्या ने और उसकी माँ ने अपने घर आने से केवल मना ही नहीं किया था, उसका खुल्लम-खुल्ला अपमान भी किया था, इतने पर भी उसे इस समय कठोर व्यवहार करना उचित नहीं लगा। वह स्नेह और सहानुभूति से भरे मधुर स्वर में बोला, "संध्या, इस समय तुम्हारे स्वयं इधर आने को कोई भी व्यक्ति उचित नहीं कहेगा। तुम अपने पिताजी को भेजती तो अच्छा होता।"

"किसको भेजती? पिताजी डर के मारे न जाने कहां छिपे हैं और माँ तालाब में जा कूदी है, बड़ी कठिनाई से उसे बाहर तो निकाल लिया गया है, किन्तु वह सदमे से बेहोश पड़ी है। मुझे औक कुछ सुझा नहीं, सीधी दौडकर तुम्हारे पास चली आयी हूँ।"

"इतना बड़ा अपमान तथा इतनी बड़ी दुर्गति इस संसार में किसी की भी नहीं हुई होगी। भगवान ऐसा दुर्दिन किसी को भी न दिखाये!"

सुनकर अरुण काफी दुःखी हुआ। वह बोला, "मुझे तो तुम लोग अस्पृश्य और शुद्र स्तर का व्यक्ति समझते हो, इसलिए मेरे द्वारा तुम अपने उद्धार की सोच भी कैसे सकती हो? तुम्हारे पिताजी किसी कुलीन ब्राहमण की खोज में गये होंगे। तुम्हें घर में रहकर उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए थी।"

रोती-बिलखती संध्या बोली, "अरुण, मेरे पिताजी किसी को ढूंढने नहीं गये, वह केवल डर कर कही छिप गये हैं। अब मुझसे कोई विवाह नहीं करेगा, मुझे केवल तुम्हारा ही सहारा है।"

संध्या की इन ऊल-जलूल बातों को सुनना अरुण को अच्छा नहीं लगा। वह संध्या को घर भेजने के लिए उसकी बांह पकड़कर उसे उठाने लगा।

अरुण को सम्बोधित कर संध्या बोली, “मैं तब तक तुम्हारे चरणों को पकड़े रहूंगी, जब तक तुम मेरे उद्धार को सहमत नहीं हो जाते। जहाँ तक मेरी कुलीनता की बात है तो वह भी सून लो। वास्तव में, मै ब्राह्मण सन्तान न होकर नाई (शुद्र) की लड़की हूँ। अब तो मेरे हाथ का छुआ पानी भी नहीं पियेगा। भगवान भी कितने निर्मम है? मुझे इतनी यातना देते हुए उन्हें थोड़ी सी भी दया नहीं आयी।”

अरुण को लगा कि शायद संध्या होश-हवास में न होने के कारण अंट-संट बके जा रही है। सम्भव है कि अवांचनीय कुछ हुआ ही न हो। मुझमें आसक्ति के कारण ही संध्या विवाह-मण्डप से भाग आयी हो। अब तक तो उसके घर पर कोहराम मचा होगा। यह सोचकर अरुण ने संध्या को समझा-बुझाकर घर भेजने का इरादा किया। उसके सिर पर हाथ रखकर अरुण धीरे से बोला, “संध्या, अच्छा उठो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर छो़ड़ आता हूँ।”

कृतज्ञता-ज्ञापन के रूप में अरुण के बार-बार पैर छूती हुई संध्या बोली, “मुझे विश्वास था कि तुम मेरी विनती को नहीं ठुकराओगे, किन्तु घर चलने से पहले मेरी पूरी बात सुन लो, नहीं तो, क्या मालूम, वास्तविकता का पता चलने पर तुम भी बदल जाओ। एक दिन हम लोगों ने तुम्हें नीच ब्राह्मण कहा था, किन्तु हमें आज पता चला कि हम तो तुमसे भी निचले दर्जे के लोग हैं। उफ, यह कैसी कड़वी और लज्जित करने वाली सच्चाई है।”

संध्या की गहरी व्यथा से अरुण को उसके घर में सचमुच ही किसी अप्रिय घटना के घटित होने का आभास होने लगा। अतः उसने धीरे-से कहा, कौन कहता है कि तुम नाई की लड़की हो और इसका क्या प्रमाण है?”

संध्या ने कहा, “गोलोक चटर्जी इस बात को डंके की चोट से कहता है। माँ कन्यादान का संकल्प करने वाली थी, मेरी दादी पास खड़ी थी, इतने में दो आदमियों को अपने साथ लिये मृत्युंजय घटक वहाँ आ गया। उन दो आदमियों में से एक न मेरी दादी को आवाज देकर बुलाया और पूछा, “क्यों तारा दीदी, हमें पहचानती हो या नहीं? तुमने अपने लड़के का

ब्राह्मण की लड़की से विवाह करके उसकी जाति तो नष्ट की ही थी, अब पोती का विवाह ब्राह्मण-परिवार में करके उनकी जाति भी भ्रष्ट करने पर तुली हो।" इसके बाद मेरे पिताजी की और अंगुली करते हुए वह आदमी बोला-प्रियनाथ मुखर्जी के नाम से अपने को कुलीन ब्राह्मण कहने वाला वह व्यक्ति असल में नाई की सन्तान है।"

अरुण ने कहा, "संध्या तुम होश में तो हो? जानती हो की तुम क्या बोले जा रही हो?"

संध्या ने अरुण के कथन को अनुसना करके अपनी बात जारी रखी वह बोली, "धूर्त मृत्युंजन घटक नं गंगाजल का मटका मेरी दादी के आगे रख दिया और बोला, "ताराकाली, सच बता कि प्रियनाथ हीरू नाई का लड़का है या मुकुन्द मुखर्जी का?" अरुण, मेरी संन्यासिनी दादी लज्जा से मुंह झुकाये बैठी रही कुछ बोल नहीं सकी। झूठ बोलती भी, तो भला किस मुंह से? सत्य को झूठलाना आसान बात नहीं है, इसलिए यह निश्चित है कि लोग हमें जो समझते थे, वास्तव में हम वह नहीं है।"

अरुण के लिए स्वीकार न करना सम्भव नहीं हुआ, किन्तु इससे उसे काफी गहरा धक्का लगा।

संध्या ने कहा, "दादी के गाँव के एक आदमी ने इस घटना का विवरण इस प्रका कह सुनाया। विवाह के समय दादी आठ साल की थी। जब दादी चौदह-पन्द्रह साल की हुई, तो एक आदमी अपने को मुकुन्द मुखर्जी बताकर दादी के घर में आकर रहने लगा। दो दिन रहने के बाद वह पाँच रुपया और एक वस्त्र भेट में लेकर चलता बना।"

उसके बाद, वह आदमी बीच-बीच में आकर घर में रहने लगा। दादी के अधिक रूपवती होने के कारण उसने दादी से दक्षिणा लेना छोड़ दिया। एक दिन अचानक उसकी असलियत खुल गयी। तब तक बाबू जी का जन्म हो चुका था। उफ, यदि मैं माँ होती, तो उसी समय उस नाजायज बच्चे का गला घोंट देती। फिर न ही बच्चा और न ही जननी अपयश, अपमान और निन्दा का पात्र बनते।

अरुण बोला, "क्या थी वास्तविकता?"

संध्या ने कहा, “रहस्य यह खुला कि उसने यह कुकर्म अपनी इच्छा से नहीं किया था। इसेक पीछे मुकुन्द मुखर्जी की सहमति नहीं अपितु स्वीकृति थी, सत्य कहै, तो निर्देश था। बात यह थी कि एक तो मुकुन्द मुखर्जी बूढ़े थे. दूसरे, उनकी न जाने कितनी स्त्रियां थी, तीसरे, वह गठिया के मरीज थे। उनकी पत्नियां तो अपने पति को पहचानती भी नहीं थी। इधर मुकुन्द मुखर्जी के मन मे लालच आ गया था। अपनी स्त्रियों को पुत्रवती बनाने के बदले रुपया कमाने का मन बना चुके थे। इसके लिए उन्होंने हीरू नाई से सांठ-गांठ की। मुखर्जी ने नाई से कहा, “तू गले में जनेऊं डाल ले और थोड़ा-बहुत ब्राह्मण-कर्म सीख ले। फिर मजे का रोजगार कर, आधी कमायी तेरी और आधी मेरी रहेगी।”

चौककर अरुण ने पूछा, “क्या यह सब अन्य स्त्रियों के साथ भी हुआ है?”

संध्या बोली, “हाँ, उसने और भी दस-बारह स्त्रियों को फांसा था और उनसे मोटी रकम वसूल की थी। वह तो कहता था कि तुम काम उससे केवल मुखर्जी ही नहीं कराते, अन्य अनेक कुलीन ब्राह्मणों ने भी अपने एजेंट छोड़ रखे हैं। वह इस प्रकार के काफी लोगों को जानता है।”

“यह सब सत्य ही होगा, अन्यना गोलोक-जैसा नरपिशाच ब्राह्मण-कुल मैं उत्पन्न न होता,” अरुण ने क्रोंध और धृणा से भरे स्वर में कहा। वह बोला, दुःख तो इस बात का है कि य नीच पुरुष समाज के भाग्य-निर्माता बने बैठे हैं।”

अपनी बात को आगे बढ़ाती हुई संध्या ने कहा, “प्रारम्भ में नाई घबरा गया था और उसने कहा था, पंण्डित जी, धर्मराज के सामने मैं क्या मुंह दिखाऊंगा?” मुखर्जी का उत्तर था, “पाप है या पुण्य, गलत या सही, इसका जिम्मा मुझ पर है। तुम्हें इससे क्या लेना-देना? तुम्हें तो ब्राह्मण के आदेश का पालन करना है।” हीरू नाई ने पूछा, “उन बेचारी अनजान स्त्रियों के पाप का प्रायश्चित कैसे होगा? यहाँ भी मुखर्जी का उत्तर था, “मेरी स्त्रियों के लिए तू क्यों परेशान होता है। उनकी सद्‌गति अथवा दूर्गति का भार मुझ पर रहेगा। तुझे इससे क्या? तुम तो केवल कमाई पर अपना ध्यान रखे। इसीलिए एक दिन हमारे घर में तुम्हारी चर्चा होने पर दादी ने मुझे धकेलते हुए कहा, “नासमझ लड़की, जात-पात में कुछ नहीं रखा, लड़का सब प्रकार से योग्य है, उसका वरण कर ले। किसी की जाति वास्तव में क्या

है, इसे तो केवल भगवान ही जानते हैं। जाति के आधार पर किसी का मूल्यांकन करना केवल मूर्खता है। महत्व गुणों को देना चाहिए, जाति-पाति को नहीं। मैंने उस दिन दादी को टटोला होता, तो मुझे आज यह दिन न देखना पड़ता।"

"अरुण, अब रात बहुत हो गयी है। उठो, मेरा साथ दो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा वरण करके तुम्हें जीवन मे पछताना नहीं पड़ेगा। मैं तुम्हारे सहयोग, त्याग और उदारता के लिए सदैव तुम्हारी कृतज्ञ रहूंगी।"

अरुण निश्चल बैठा रहा और बोला, "मैं इस समय तुम्हारे साथ नहीं चल सकता।"

आश्चर्य और दुःख के साथ संध्या बोली, "तुम नहीं चलोगे, तो मैं अकेली किसी को कैसे मुंह दिखाऊंगी?"

संध्या के इस प्रश्न का उत्तर अरुण आसानी से न दे सका। वह बोला, "संध्या, मैं क्षमा-याचना करता हूँ। मुजे सोचने-विचारने के लिए थोड़ा समय चाहिए।"

काफी देर तक संध्या अंधेरे में अरुण के चेहरे को ताकती रही, फिर उठकर खड़ी हो गयी और बोली, "सारा जीवन पड़ा है, आराम से सोचो,मैं भी तो अब तस सोचती ही रही हूँ और अब किसी निर्णय पर पहुंची हूँ। हाँ, तुम्हें भी सोचने के लिए समय चाहिए, बिल्कुल ठीक है।"

उठकर जाती संध्या ने अपने सिर से खिसके आँचल को संभाला, लेकिन अपनी वेशभूषा, अलंकार और साज-सज्जा को देखकर उसे रोना आ गया। क्या किसी ने सोचा होगा कि दुल्हन की यह दुर्गति होगी?

संध्या ने अरुण को प्रणाम किया और फिर वह कमरे से बाहर निकल पड़ी।

संध्या को अकेले रात के समय जाते देखकर अरुण चिन्तित हो उठा। उसके साथ जाने के लिए वह अपने नौकर शिब्बू को आवाज देने लगा, लेकिन शिब्बू से वापसी उत्तर न पाकर स्वयं संध्या के पीछे दौड़ पड़ा। प्रियनाथ दीये की रोशनी में बक्सों में से अपनी जरूरत के कुछ सामान को निकालकर थैले मे डाल रहे थे कि उन्होंने "बाबू जी" की आवाज सुनी, तो

चौंका उठे। वास्तव में वह छिपकर तैयारी कर रहे थे। अतः हाथ में पकड़े सामान को एकदम नीचे रखकर उन्होंने उत्तर दिया, “क्या संध्या बैटी है?” बस, जाने वाला हूँ अब अधिक देर नहीं है।”

अपने आँसुओ को छिपाती हुई संध्या बोली, “बाबू जी, यह कैसी बात कर रहे हो?”

धबराकर प्रियनाथ बोले, “क्यों, मैंने कुछ गलत कह दिया है?”

थैले को पकड़ती हुई संध्या ने पूछा, “बाबू जी, इसमें आपने क्या रख छोड़ा है?”

भेद खुल जाने से घबराये प्रियनाथ ने बात टालने की गरज से कहा, “बेटीस कुछ नहीं इसमें तो मैंने दो-चार दवाइयां और उसके साथ मेटेरिया “मेडिया” की छोटी प्रति रखी है। सोचता हूँ कि उतना कुछ रखूं, जितना अपने से उठाया जा सके। किसी नयी जगह पर भी समय बिताने के लिए थोड़ा-बहुत प्रैक्टिस कर लेने में कुछ हर्ज तो नहीं हैं?”

“तो क्या माँ आपको यह सब नहीं लेने देती?”

प्रियनाथ ने संकेत से इस प्रश्न का उत्तर देना चाहा, संध्या कुछ भी समझ नहीं सकी।

“बाबू जी, तुम्हारा कहां जाकर प्रैक्टिस करने का इरादा है?”

“वृन्दावन में। तुम तो जानती हो कि वहाँ निरन्तर यात्रियों का तांता लगा रहता है। वहाँ रोगियों को दवा देने में महीने में चार-पाँच रुपये की आय हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। इतनी तो निश्चित ही है, इस राशि में मेरी गुजर-बसर हो ही जायेगी।”

“बाबू जी, ऐसी क्या बात है, वहाँ तो इससे कही अधिक आय हो जाया करेगी, किन्तु वहाँ तुम्हारी किसी से जान-पहचान ही नहीं। नये स्थान पर कहां भटकते फिरेगे? यदि कहीं जाना ही था, तो अपनी माँ के साथ काशी चले जाते।”

“बेटी, मैं अपने साथ किसी और की नहीं लपेटना चाहता। भले ही वह माँ हो या फिर पत्नी हो, मेरे कारण लोगों को काफी दुःख और अपमान सहना पड़ा है। अब तो मैंने अकेले, अजनान स्थान पर गुमनाम जिन्दगी जीने का मन बना लिया है।”

“पिता की छाती पर अपना सीर टिकाकर औक उसके दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर संध्या बोली, बाबू जी, तुम तो तभी जा सकोगे, जब मैं तुम्हें अकेला जाने दूंगी।”

लड़की के हाथों अपने हाथों को छुड़ाकर प्यार से उसके सिर को सहलाते हुए प्रियनाथ ने मुधर स्वर में कहा, “बिटिया, मेरे साथ किसी अनजान स्थान पर तू कहां भटकती फिरेगी, देखो, तुम्हारी माँ बेचारी ने भी बहूत दुःख कष्ट झेले हैं। तू उसके साथ रहकर उसे धीरज बंधा। हाँ, मुझे पूछता हुआ कोई रोगी आ जाये, तो उसे तुम दवा देगी। यही तेरे द्वारा की गयी मेरी सेवा होगी। हाँ, यदि तुम्हारी माँ देना चाहे, तो मेरी पुस्तक विपिन को दे देना। वह बेचारा गरीब होने के कारण न किताबे खरीद सका और न ही कुछ सीख सका।”

संध्या बोली, “बाबू जी, मैंने तो तुम्हारे साथ चलने की ठान ली है। यह देखो, मैंने प्रितिदिन पहनने के कपड़ों का थैला बना लिया है।” इसी कथन के साथ संध्या ने अपना झोला पिता के आगे रख दिया।

प्रियनाथ संध्या की प्रकृति को जानते थे, इसलिये उन्होंने अधिक समझाना-बुझाना बेकार समझ। वह बोले, “ठीक है, तेरा हठ है, तो मैं क्या कह सकता हूँ, किन्तु यह न भूलना कि इससे तुम्हारी माँ को बहुत दुःख-कष्ट होगा।”

संध्या ने कल रात सभी लोगों को अपने पिता पर थू-थू करते देखा है। सौभाग्य की बात थी कि ये लोग अपने ही मकान में रहेत थे। यदि कहीं किरायेदार होते, तो शायद लोगों ने इन्हें गाँव से बाहर निकाल दिया होता? अपने परिवार के इस अपमान को भूलाना संध्या के लिए आसान नहीं था। फिर भी, आज उसने इस बात को मुंह पर नहीं आने दिया। वह तो केवल यही एक रट लगाती रही, मुझे तुम्हारे साथ चलना है। उसके कारण के अन्तर्गत यह भी जोड़ दिया, “यदि मैं तुम्हारे साथ न चली, तो तुम्हारी देखभाल कौन करेगा? तुम्हें पकाकर कौन खिलायेगा?”

यह कहकर संध्या ने अपने पिता के सामान को ठीक से संभालकर थैले में रखा और फिर बोली, “बापू, हमें अभी यहाँ से निकल जाना चाहिए, तभी हम बारह बजे वाली गाड़ी पकड़ सकेंगे।”

मां के बन्द कमरे के बाहर से माँ को प्रणाण करके संध्या ने माँ को सुनात हुए कहा, “माँ, मैने केवल दो साड़ियों और ब्लाउजों को छोड़कर तुम्हारे घर से कुछ भी नहीं लिया है। मैं बाबू जी के साथ जा रही हूँ, रुकने का समय नहीं है। तुम मेरे अपराधों के लिए मुझे क्षमा कर देना।”

यह कहकर संध्या रो पड़ी। भीतर से कोई उत्तर न पाकर संध्या बोली, “माँ, हम तो अपमानित और कलंकित होकर यहाँ से विदा हो रहै है, किन्तु इससे हमारा भी कोई दोष है अथवा हमे गलत व्यवस्था का शिकार होना पड़ रहा है, इस सत्य को केवल अन्तर्यामी ही जानते होंगे न्याय करने वाला भी तो भगवान ही है।”

भीतर से न तो कोई आवाज आयी न ही बन्द किवाड़ खुले। लिहाजा निराश होकर संध्या अपने पिता के साथ सीढ़ियों से नीचे उतर गयी। नीचे खड़े युवक को चांदनी के प्रकाश में पहचानकर प्रियनाथ ने पूछा, “बेटे, अरुण हो न?”

अरुण बोला, “आपके बारह बजे की गाड़ी से जाने को सुनकर आपसे मिलने भागा आया हूँ।”

प्रियनाथ बोले, “बेटे, मैं तो संकट में पड़ गया हूँ। लड़की साथ चलने पर अमादा है। मरे साथ छोड़ना चाहती ही नहीं, जबकि मेरा कहां जाना और कहां ठहरना आदि कुछ भी निश्चित नहीं है। इस पगली को तुम ही समझाओ।”

सुनकर चकित हुए अरुण ने पूछा, “संध्या, यह मैं क्या सुन रहा हूँ?”

संध्या बोली, “हाँ, सच है।”

अरुण थोड़ी देर बोला, “संध्या मैं उस रात प्रयन्त करने पर भी किसी निश्चत पर नहीं पहुंच सका था, किन्तु आज मैं तुम्हें अपनाने का निश्चय करके ही तुम्हारे पास आया हूँ।”

प्रियनाथ के लिए अरुण का कथन एक पहेली थी, इसीलिए वह उसके चेहरे को ताकते रह गेय। संध्या धीरे-से-बोली, “उस दिन मैं बिना सोच-विचार किये तुम्हारे पास दौडी चली आयी थी, किन्तु अब मेरा मन स्थिर हो गया है। क्या स्त्रियों के लिए विवाह के अतिरिक्त कुछ और भी करणीय है या नहीं? इसकी जांच-परख के लिए मैंने पिताजी के साथ जाने का निश्चय किया है। अब रुकने का समय नहीं, मैं तुमसे करबद्ध होकर क्षमा-याचना करती हूँ।”

यह कहकर संध्या पिता का हाथ पकड़कर चल पड़ी, तो अरुण भी साथ चल दिया। संध्या ने अरुण की और उन्मुख होकर कहा, “भैया, तुम लौट जाओ, तुम्हारा हमारे साथ चलना ठीक नहीं।”

अरुण ने कहा, “संध्या, क्या ऐसे दुःख-कष्ट में तुम्हारी माँ को अकेली छोड़कर चल देना तुम्हें सही लगता है?”

संन्ध्या बोली, “आज तक भाग्य में दोनो माता और पिता का संग लिखा था, सो दोनों की सेवा की और प्यार पाया, किन्तु आज दोनों में से एक को छोड़ना आवश्यक हो गया है। सोचती हूँ की माँ अपने लिए जुगाडं कर लेगी, इसी गाँव की बेटी है, फिर कल आये तमाशबीनों में से कुछ माँ के लिए किसी प्रायश्चित की बात भी कह रहे थे, अतः उनकी देखभाल तो हो ही जायेगी, किन्तु बाबू जी के प्रति तो सहानुभूति रखने वाला कोई भी नहीं, इसलिए मैंने उनके साथ जाने का निर्णय लिया है।”

इसी के साथ वे दोनों-बाप-बेटी फिर आगे चल दिये।

रास्ते में उन्होंने लोगों को विविध मिष्ठानों कि प्रशंसा करते और पान चबाते हुए अपने सामने से गुजरते देखा। वे लोग आनन्द और तृप्ति से निहाल हो रहे थे। उनका सामना न करने की इच्छा से संध्या ने अपने को तथा अपने पिता को ओट में कर लिया और उन लोगों के दूर चले जाने पर उन्होंने अपनी राह पकड़ी।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर लोगों की तृप्ति, प्रसन्नता और सन्तुष्टि का कारण स्पष्ट हो गया। समीप की अमराई के पीछे गोलोक चटर्जी के घर तीव्र प्रकाश औक कोलाहल से वहाँ

हुए उत्सव का पता चलता था। अभी तक खाने वाले उच्च स्वर में पूड़ी, दही, मिठाई की मांग कर रहे थे।

प्रियनाथ ने कहा, “गोलोक के विवाह का भोज हो रहा है। चटर्जी खिलाने-पिलाने में उदारता दिखाता है। आज भी उसने पाँच गाँवों के सभी लोगों-शुद्रों, बनियों तथा ब्राह्मणों-को निमंत्रण दिया लगता है।”

आश्चर्य में पड़ी संध्या ने पूछा, “किसके विवाह का निमन्त्रण! नाना गोलोक ने फिर से विवाह किया है?”

“हाँ, गोलोक ने परसों प्राणकृष्ण की लड़की से विवाह रचाया है।”

“क्या हरिमति के साथ? अरे, वह तो उसकी पोती की आयु की है।”

“हाँ-हाँ हरिमति के साथ। लड़की बड़ी हो गयी, बाप गरीब ब्राह्मण था। चटर्जी ने दोनों के उद्धार का पुण्य कमा लिया।”

“बाबू जी, यह पुण्य नहीं, घोर पाप है। यहाँ से जल्दी चलो, मेरा सिर चकराने लगा है। कुछ देर और यहाँ रुके, तो मैं मूर्छित होकर गिर पडूंगी।”

यह कहती हुई संध्या पिता को घसीटकर स्टेशन की ओर चल दी। गाड़ी के आने के समय से आधा घण्टा पहले स्टेशन पर पहुंच गये। गाँव का छोटा-सा स्टेशन था और रात का समय था, अतः अधिक लोग नहीं थे। प्लेटफोर्म के एक ओर वृक्ष के नीचे अकेली बैठी एक स्त्री ने प्रियनाथ को देखते ही कपड़े से सिर को ढक लिया।

प्रियनाथ एक ओर हट गये, किन्तु संध्या ने पहचान लिया और फिर आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली, ज्ञानदा दीदी, तुम यहाँ, इस समय और वह भी अकेली...।”

ज्ञानदा संध्या को अपने पास खींचकर उससे लिपट गयी और फिर बिलखने लगी। संध्या तो अपने ही दुःख को गहनतम मानकर व्यथित थी, उसे क्या मालूम है कि इस गाँव में उससे भी अधिक दुःखी, अपमानित और कलंकित कोई दूसरी महिला भी है? संध्या को

ज्ञानदा के दुर्भाग्य की कोई जानकारी नहीं थी। सब कुछ जानने वाले प्रियनाथ भी परेशान हो उठे।

संध्या ने पूछा, “दीदी, तुम्हें कहां जाना है?”

गला रूंध जाने के कारण ज्ञानदा कुछ साफ नहीं कह सकी, रुक-रुककर बोली, “मैं क्या जानूं कि मुझे कहां जाना है?”

इसके बाद काफी देर तक खामोशी छायी रही। गाड़ी के आने का समय समीप होने के कारण टिकट खरीदना था, अतः प्रियनाथ ने पूछा, “ज्ञानदा, क्या तुमने टिकट खरीद लिया है या तुम्हारा टिकट भी खरीदना है?”

ज्ञानदा ने सिर हिलाकर कहा, “खरीदा तो नहीं है।” टप-टप आँसू बहती हुई ज्ञानदा बोली, “बाबू, आप लोगों को कहां जाना है?”

“वृन्दावन।”

“क्या संध्या भी वृन्दावन जायेगी?”

“हां।”

आँचल की गांठ को खोलकर रुपये प्रियनाथ के चरणों में रखती हुई ज्ञानदा बोली, “मेरे पास यही पचास रुपये है। मुझे नहीं मालूम कि वृन्दावन का कितना भाड़ा लगता है। एक टिकट मेरे लिए भी खरीद लीजिये और मुझे केवल वहाँ तक ले चलिये। वहाँ पहुंचते ही मैं अपने आप आपसे अलग हो जाऊंगी। आपको किसी संकट में नहीं डालूगी।”

प्रियनाथ कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, “चलो, हमारे साथ ही चलो। जो भी होगा, देखा जायेगा।”

समाप्त